



उपनिषत्सार

मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तरीय, ऐतरेय, श्वेताश्वतर, ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौषीतकि ब्राह्मण और मैत्री

अर्थ सहित

अपने पुत्र पौत्र मित्र बान्धव योग्य अधिकारियों के लिये

राजा शिवप्रसाद सितारैहिन्द ने छपवाया

तीसरी बार

लखनऊ

सुपरिण्टेण्डेण्ट बाबू मनोहरलाल भार्गव के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ाने में छापीगई

अक्टूबर सन् १९०८ ई० ॥

जुज़ ३ वर्क़ ३

अप्राणोह्यमनाः शुभ्रोह्यक्षरात् परतः परः ॥ २

दिव्य है अमूर्त्त है पुरुष है वही बाहर है वही भी
है अज है अप्राण है अमन है शुभ्र है पर अक्षरसेभी परे

यदर्चिष्मद्यदणुभ्योऽणु यस्मिन् लोका निहि
लोकिनश्च तदेतदक्षरं ब्रह्मस प्राणस्तदु वाङ्
नः तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वोद्धव्यं सौम्य विद्धि

जो अर्चिष्मान् है जो अणुसे भी अणु है जिसमें लो
और लोकों के रहनेवाले निहित हैं सो यह अक्षर ब्र
है वही प्राण है वही वाक् है वही मन है सो सत्य
सो अमृत है हे सौम्य! उसी को बोद्धव्य जान ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा वि
द्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनु
भाति सर्व्वं तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति।

वहां (ब्रह्म में) सूर्य प्रकाश नहीं करता न चन्द्र
और तारे न ये बिजली अग्निकी तो क्या बात है उ
के (ब्रह्मके) प्रकाशमान होनेसे सब प्रकाशमान हो
हैं उसीका प्रकाश सबको प्रकाशमान करता है ॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म द
क्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्द्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मैवे
विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥

॥ यह अमृत ब्रह्म आगे है ब्रह्म पीछे है ब्रह्म दहने और
बाँ है नीचे और ऊपर है यह वरिष्ठ (श्रेष्ठ) ब्रह्महीं
ा हुआ विश्व (जगत) है ॥

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सू-
क्ष्मतरं विभाति । दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥

यह (ब्रह्म) बड़ा है दिव्य है अचिन्त्यरूप है सूक्ष्म
सूक्ष्म तर है प्रकाशमान है दूर से दूर है और यहां
कट भी है देखनेवालों के लिये इसी गुहामें स्थितहै ॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तप
कर्म्मणा वा । ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्तत
तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥

। वह चक्षु से ग्रहण नहीं होता न वाक् से न अन्य
न्द्रियों से न तप से न कर्म्म से ज्ञानके प्रसाद से शुद्ध है
न्तःकरण जिसका वही उस निष्कल (निरवयव) को
ध्यान के द्वारा देखता है ॥

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति
नामरूपे विहाय । तथा विद्वान् नामरूपाद्विमु
क्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

जैसे बहती हुई नदियां समुद्र में जाके नाम रूप छोड़

के अस्त होजाती हैं वैसेही विद्वान् नाम रूप छो॰ परात्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त होता है ॥

अथर्ववेदीय माण्डूक्य

सर्व्वंह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ॥

सब यह ब्रह्म यह आत्मा है ॥

नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं । अदृष्टमव्यवहा॰ मग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्र॰ यसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं च॰ मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥

न अन्तः प्रज्ञ है न बहिः प्रज्ञ है। न दोनों प्रज्ञ है प्रज्ञानघनहै न प्रज्ञ है न अप्रज्ञ है। अदृष्ट है अव्यवहा॰ है अग्राह्यहै अलक्षणहै अचिन्त्य है अव्यपदेश्य (क॰ को अशक्य) है एकात्म्य प्रत्यय (ज्ञान—प्रतीति) स॰ है (अर्थात् इस निश्चय से मिलताहै कि तीनों अव॰ में वही एक आत्मा है) उसमें सारे प्रपञ्च उपशम प्राप्त होते हैं शांत है कल्याणरूप है अद्वैत है उसी चतुर्थ मानते हैं वही आत्मा है वही विज्ञेय है ॥

यजुर्व्वेदीय तैत्तिरीय

एतत्तदो भवतिआकाशशरीरंब्रह्म । सत्यात्म
णारामं मन आनन्दं । शान्तिसमृद्धममृतम् ॥

वह तब ब्रह्म होजाताहै आकाश है शरीर जिसका
यात्म है प्राणोंमें है आक्रीड़ा जिसकी मनको आनन्द
जो शान्ति है समृद्ध जिसकी अमृत है ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गु-
यां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्व्वान् कामान्
ह ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥

सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म को परम आकाश में गुहा के
तर रहता हुआ जाने सो सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ सारे
म भोगता है ॥

असन्नेव भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत् । अ-
ल ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुरिति ॥

जो ब्रह्म को असत् जाने आपही असत् होजाता है ।
ब्रह्म को सत् जाने उस को सत् जानते हैं ॥

सोऽकामयत । बहुस्यां प्रजायेयेति । सतपो
तप्यत सतपस्तप्त्वा । इद छं सर्व्वमसृजत
दिदंकिञ्च । तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ।
दनुप्रविश्य । सच्चत्यच्चाभवत् । निरुक्तञ्चानि-

यच्च स्थावरं । सर्व्वं तत् प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रति-ष्ठितंप्रज्ञानेत्रोलोकः प्रज्ञाप्रतिष्ठा प्रज्ञानंब्रह्म ॥

हृदय मन सञ्ज्ञान (चेतन भाव) अज्ञान विज्ञान प्रज्ञान मेधा दृष्टि धृति (धैर्य) मति मनीषा (प्रबल बुद्धि) जूति (गति) स्मृति सङ्कल्प क्रतु (कामना) असु (प्राण) काम वश ये सब प्रज्ञान ही के नाम हैं यही ब्रह्म है यही इन्द्रहै यही प्रजापतिहै यही सब देवता है यही पृथ्वी वायु आकाश जल तेज पञ्चमहाभूत है यही है वे जो छोटे छोटे मिले हुए हैं । इन के उन के बीज अण्डज जारुज स्वेदज उद्भिज्ज घोड़ा गाय पुरुष हाथी जितने प्राणधारी हैं क्या चलनेवाले क्या उड़ने-वाले क्या स्थावर। सब प्रज्ञाही से हुए हैं (अर्थात् प्रज्ञा है नेत्र अर्थात् निर्वाह करने वाला जिसका) प्रज्ञान में प्रतिष्ठित हैं प्रज्ञान ही से संसार हुआ प्रज्ञानही प्रतिष्ठा है प्रज्ञान ही ब्रह्महै ॥

कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतर

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं । नेमा वि-द्युतो भान्ति कुतोयमग्निः । तमेव भांतमनुभा-ति सर्व्वं । तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति ॥

वहां (ब्रह्म में) सूर्य प्रकाश नहीं करता न चांद और

तारे न ये बिजली अग्नि की तो क्या बात है उसी के (ब्रह्म के) प्रकाशमान होने से सब प्रकाशमान होते हैं उसी का प्रकाश सबको प्रकाशमान करता है॥

वाजसनेयसंहिता।

(ईशावास्य)

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्व्वस्य तदुसर्व्वस्यास्य बाह्यतः॥

वह चलता है वह नहीं चलता है वह दूर है और समीप भी। वह इस सबके भीतर है वह इस सबके बाहर है॥

यस्तु सर्व्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्व्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ यस्मिन् सर्व्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

सब भूतों को केवल आत्मा में देखता है। और आत्माको सब भूतों में वह किसी से घिन नहीं करता॥ जब मनुष्य जानता है कि सारे भूत आत्माही हैं (और) एकत्व देखता है तो फिर मोह और शोक कौन हैं (अर्थात् नहीं रहते)॥

सामवेदीय तलवकार
(केन)

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचोह वाचं स प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुः ॥

(ब्रह्म वह है जो) कान का कानहै मनका मन है वाचा का वाचा है प्राण का प्राण है आंख की आंखहै।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छतिनो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां येनस्तद्व्याचचक्षिरे ॥

न वहां (ब्रह्म में) आंख जाती है न वाक् जाती है न मन हम (इसलिये उसको) नहीं जानते न (यह) जानते हैं कि किसतरह उसे बतलावें जो कुछ कि जाना हुआहै उससे वह अन्यहै वह उससे भी जो कुछ कि नहीं जाना हुआ है परे है ऐसाही पहलों से जिन्हों ने उसे हमको समझाया सुना है ॥

यद्वाचानाभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपास

ते॥ यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

जो वाक् से प्रकट नहीं होता और जिससे वाक् प्रकट होतीहै उसी को तू ब्रह्म जान न यह जो उपासना किया जाता है। जो मनसे मनन नहींकरता और जिससे कहते हैं कि मन मनन किया जाता है उसीको तू ब्रह्म जान न यह जो उपासना किया जाता है। जो आंखों से नहीं देखता और जिससे आंखों को देखते हैं उसीको तू ब्रह्म जान न यह जो उपासना किया जाता है। जो कानों से नहीं सुनता और जिससे यह कान सुना जाताहै उसीको तू ब्रह्म जान न यह जो उपासना किया जाता है। जो प्राण से प्राण नहीं लेता और जिससे प्राण प्राण लेताहै उसीको तू ब्रह्म जान न यह जो उपासना कियाजाताहै॥

यजुर्वेदीय कठ॥

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

जाननेवाला न जन्मता है न मरता है न वह किसी से हुआ न उससे कोई हुआ । वह अजहै नित्यहै शाश्वता है पुराण है शरीर के मारेजाने से मारा नहीं जाता ॥

हन्ताचेन्मन्यतेहन्तुछंहतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायछंहन्ति न हन्यते ॥

जो मारनेवाला शोचे कि मैं मारताहूं जो मरनेवाला शोचे कि मैं मरताहूं तो दोनों नहीं जानते न वह मारता है न वह मारा जाता है ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसन्नित्यमगन्धवच्च यत् । अनाद्यनन्तम्महतः परन्ध्रुवंनिचाय्यतंमृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥

जिसने अशब्द अस्पर्श अरूप अव्यय अरस नित्य अगन्ध अनादि अनन्त ध्रुव बुद्धिसे भी परे (ब्रह्म) को जाना सो मृत्यु के मुख से छूटता है ॥

हछंसःशुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योम सदब्जागोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥

हंस (सूर्य) होके आकाश में रहता है वसु (वायु) होके अन्तरिक्ष में रहता है होता होके पृथ्वी में रहताहै सोम होके घडे में रहताहै । वह मनुष्य में रहताहै वह

वत। में रहताहै वह सत्य में रहताहै वह आकाशमें रहता है वह पानी में जन्मता है (जलजन्तु) वह पृथ्वीमें जन्मता है (अन्न) वह यज्ञ में जन्मता है वह पहाड़पर जन्मता है (नदी) वह सत्य है वह बड़ा है ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्व्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥

जैसे एक अग्नि संसार में आके रूप रूप प्रति रूप रूप की होजाती है वैसेही एक आत्मा सब प्राणियोंके भीतर (और) बाहर भी रूप रूप प्रति रूप रूप का होरहा है ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्व्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥

जैसे एक वायु संसार में आके रूप रूप प्रति रूप रूप की होजाती है वैसेही एक आत्मा सब प्राणियों के भीतर और बाहर भी रूप रूप प्रति रूप रूप का होरहाहै ॥

एको वशीसर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपम्बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतन्नेतरेषाम् ॥

सब प्राणियों के भीतर वही एक आत्मा है वश करा...
वाला जो एक रूप को बहुत करता है। जो धीर अ...
अपने में स्थित देखते हैं वही सदा सुखीहैं दूसरे नहीं...

अथर्ववेदीय प्रश्न ॥

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयित...
मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः। स परेऽक्ष...
आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥

यही विज्ञानात्मा पुरुष देखनेवाला है छूनेवाला...
है सुननेवाला है सूंघनेवाला है रस लेनेवाला है मनन...
करनेवाला है जाननेवाला है करनेवाला है। वह पर...
अक्षर आत्मा में सम्प्रतिष्ठित है ॥

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि
सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र। तदक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य
स सर्व्वज्ञः सर्व्वमेवाविशेति ॥

हे सौम्य! जो कोई अक्षर (ब्रह्म) को जो विज्ञाना-
त्मा है और जिसमें सब देवता (इन्द्रिय) प्राण और भूत
(पञ्चभूत) प्रतिष्ठित हैं जानता है वह सर्व्वज्ञ है वह
सब में प्रवेश करता है ॥

सयथेमानद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं

प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे स मुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तंगच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते सएषोऽकलोऽमृतो भवति ॥

जैसे ये समुद्र को बहती हुई नदियां समुद्र में पहुँच कर अस्त होजातीहैं उनका नाम और रूप नाश होजाता है केवल समुद्र पुकारा जाता है ऐसेही पुरुष (ब्रह्म) को जाती हुई इस परिद्रष्टु (देखनेवाले) की सोलहों कला (प्राण १ श्रद्धा २ आकाश ३ वायु ४ अग्नि ५ जल ६ पृथिवी ७ इन्द्रिय ८ मन ९ अन्न १० वीर्य ११ तप १२ मन्त्र १३ कर्म्म १४ लोक १५ नाम १६) पुरुष में पहुँच कर अस्त होजाती हैं उनका नाम और रूप अस्त होजाता है केवल पुरुष (ब्रह्म) पुकारा जाता है वह अकल है वह अमृत है ॥

छान्दोग्य

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्तउपासीत ॥

सब यह निश्चय ब्रह्म है क्योंकि उससे पैदा हुआ [illegible]में लय होताहै और उसीसे स्थितहै शांत होके ऐसी [illegible] करे ॥

प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति स होवा
विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च
विजानामीति तेहोचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदे
खं तदेव कमिति ॥

प्राण ब्रह्म है क ब्रह्म है ख ब्रह्म है उसने कहा प्रा
ब्रह्म यह तो मैंने समझा पर क और ख नहीं सम
उन्हों (अग्नियों) ने कहा जो क सोई ख है और
ख सोई क है ॥

अस्य सौम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मन
संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्य
देवतायां स य एषोणिमैतदात्म्यमिदछंसर्वं
त्सत्यछं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति ॥

जब मनुष्य मरता है उसकी वाक् मनमें लयहोती
मन प्राण में प्राण तेज में तेज परदेवता में वह
अणिमा है सो आत्म्य यह सब वह सत्य वह आत्मा
वह तू है हे श्वेतकेतु !॥

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान
द्विजानाति स भूमा अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्
च्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा त
मृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यछं स भगवः कस्मिन्
तिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति

वह जिसमें कोई नहीं देखसकता जिसको कोई नहीं सुन सकता और जिस को कोई नहीं जान सकता वह भूमा है वह जिस में दूसरा देख सकता है जिसको दूसरा सुन सकता है और जिस को दूसरा जान सकता है वह अल्प है निश्चय भूमा अमृत है जो अल्प है वह मर्त्य है भूमा कहां रहता है हे भगवन्! (नारद ने पूछा) वह अपनी महिमामें रहता है वा यदि पूछो वह महिमा कहां है सनत्कुमार ने (कहा) वह अपनी महिमा में नहीं रहता है ॥

आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वमिति ॥

निश्चय आत्मा नीचे से आत्मा ऊपर से आत्मा पीछे से आत्मा आगे से आत्मा दक्षिण से आत्मा उत्तर से आत्माही यह सब है ॥

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरम् ॥

वह कहता है कि इसकी जरा से वह जीर्ण नहींहोता इसके वधकरनेसे वह वध नहींहोता यह ब्रह्मपुर सत्यहै॥

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसङ्कल्प

आकाशात्मा सर्वकर्म्मा सर्वकामः सर्वगन्धः स
र्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ॥

मनोमय है प्राण है शरीर उस का भारूप है सत्यं
संकल्प है आकाशात्मा है सर्व्वकर्म्मा है सर्व्वकाम
सर्व गन्ध है सर्वरसहै इस सबको ढके है न किसी
कहता है न किसी का आदर करता है ॥

एषम आत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान् व्रीहेर्वा य
द्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुला
एषम आत्मान्तर्हृदये ज्यायान् पृथिव्या ज्या
न्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवोज्यायानेभ्योलोकेभ्यः

यह आत्मा क्या मेरे हृदय के भीतर है व्रीहिसे भ
छोटाहै वा यव से भी वा सरसों से भी वा कंगनी से
वा उसके तण्डुल से भी यह आत्मा मेरे हृदय के भी
है पृथिवी से भी बड़ा है अन्तरिक्ष से भी बड़ाहै दि
भी बड़ाहै इन सब लोकों से भी बड़ाहै ॥

सर्वकर्म्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसःस
मिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एषम आत्मान्तर्हृद
एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसम्भवितास्मीति ॥

वह सर्वकर्म्मा है सर्वकामहै सर्व्वगन्धहै सर्वरसहै
इस सबको ढकेहै न वह बोलताहै न आदर करताहै
मेरेहृदय में आत्माहै यह ब्रह्महै मरके मैं उसे पाऊंगा

सदेवसौम्येदमग्रआसीदेकमेवाऽद्वितीयम् ॥ तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्विती यं तस्मादसतःसज्जायेत ॥ १ ॥ कुतस्तु खलुसौम्यैव ॐ स्यादिति होवाच कथमसतःसज्जायेतेति ॥ सत्वेव सौम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम् ॥ २ ॥

हे सौम्य!यह आगे सत्ही था एक ही अद्वितीय ॥ उसी को कोई कहते हैं यह आगे असत्ही था एकही अद्वितीय उसी असत् से सत् निकला ॥ १ ॥ उस ने कहा पर हे सौम्य ! निश्चय ऐसा क्योंकर होसकता है कि असत् से सत् निकले यह आगे सत्ही था एक ही अद्वितीय ॥ २ ॥

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरातद्ब्रह्मतदमृत ॐ स आत्मा ॥

निश्चय आकाश नाम है नाम रूप से परे सो ब्रह्म वह अमृत है वह आत्मा है ॥

बृहदारण्यक

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेत् ॥

यह पहले ब्रह्म था वह आत्माही को जानता भया ॥

अहं ब्रह्मास्मीति ॥

मैं ब्रह्म हूं ॥

तस्मात्तत्सर्व्वमभवत् ॥

उस (जानने) से वह (ब्रह्म) सब हुआ ॥

न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारछंशृणु नमतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञातेर्विज्ञातारं जानीयाः ॥

न दृष्टि के द्रष्टा को देखता है न श्रुति के श्रोता सुनता है न मति के मन्ता को मनन करताहै न विज्ञ के ज्ञाता को जानता है ॥

यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरोयंपृथि वी न वेद यस्य पृथिवीशरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृतः । योऽप्सु ति ष्ठन्नद्भ्योऽन्तरोयमापो न विदुर्यस्यापःशरीरं यो पोन्तरो यमयत्येषत आत्मान्तर्य्याम्यमृतः । योन्त ग्नौतिष्ठन्नग्नेरन्तरो यमग्निर्नवेद यस्याग्निः रीरंयोऽग्निमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्य मृतः । योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्नन्तरिक्षादन्तरोयमन्त रिक्षं न वेद यस्यान्तरिक्षछं शरीरं योऽन्तरिक्ष

तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। योवा
ौतिष्ठन्वायोरन्तरो यंवायुर्नवेद यस्य वायुःशरी
योवायुमन्तरो यमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृ
ः।योदिवितिष्ठन्दिवोऽन्तरो यंद्यौर्नवेदयस्यद्यौः
ारीरं यो दिवमन्तरोयमयत्येष तआत्मान्तर्या
म्यमृतः। य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरोयमा
दित्यो नवेदयस्यादित्यःशरीरं य आदित्यमन्त
ोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। यो दिक्षु
तिष्ठन्दिग्भ्योऽन्तरो यंदिशोनविदुर्यस्यदिशःश
रीरंयोदिशोऽन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्य
मृतः। यश्चन्द्रतारके तिष्ठंश्चन्द्रतारकादन्त
रोयंचन्द्रतारकं न वेद यस्य चन्द्रतारकंशरी
रंयश्चन्द्रतारकमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्त
र्याम्यमृतः। य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरोय
माकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशम
न्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। यस्त
मसि तिष्ठंस्तमसोऽन्तरो यं तमो न वेद यस्यत
मः शरीरं यस्तमोऽन्तरोयमयत्येष त आत्मान्त
र्याम्यमृतः। यस्तेजसितिष्ठंस्तेजसोऽन्तरोयंते
जो न वेद यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोऽन्तरोयमय

त्येषंत आत्मान्तर्याम्यमृतः । इत्यधिदैवत
धिभूतम्॥ यःसर्व्वेषुभूतेषुतिष्ठन्सर्वेभ्योभूते
न्तरोयच्छंसर्व्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्व्वाणि
भूतानि शरीरं यः सर्व्वाणि भूतान्यन्तरोय
त्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः । इत्यधिभूतम
ध्यात्मम्॥ यःप्राणे तिष्ठन्प्राणादन्तरो यं प्राणो
वेदयस्यप्राणः शरीरं यः प्राणमन्तरो यमयत्ये
त आत्मान्तर्याम्यमृतः । यो वाचि तिष्ठन्वाचो
न्तरो यं वाङ् न वेद यस्य वाक् शरीरं यो वाचम
न्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः । यश्च
क्षुषि तिष्ठछंश्चक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद यस्य
चक्षुः शरीरं यश्चक्षुरन्तरो यमयत्येष त आत्मा
न्तर्याम्यमृतः । यःश्रोत्रे तिष्ठञ्छ्रोत्रादन्तरो यं
श्रोत्रं न वेद यस्य श्रोत्रछंशरीरं यः श्रोत्रमन्त
यमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृतः । यो मन
तिष्ठन्मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य मनः
रीरं यो मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्त
म्यमृतः । यस्त्वचितिष्ठछंस्त्वचोऽन्तरो यंत्वङ्
वेद यस्य त्वक् शरीरं यस्त्वचमन्तरो यमयत्ये
त आत्मान्तर्याम्यमृतः । यो विज्ञाने तिष्ठन्

नादन्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानꣳ
रीरं यो विज्ञानमन्तरोयमयत्येष त आत्मान्त
र्याम्यमृतः। यो रेतसि तिष्ठन्रेतसोऽन्तरो यꣳ
रेतो न वेद यस्य रेतः शरीरं यो रेतोऽन्तरोयम
यत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः
श्रोताऽमतोमन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतो
स्ति द्रष्टा नान्योऽतोस्ति श्रोता नान्योऽतोस्ति
मन्ता नान्योऽतोस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्या
म्यमृतोऽतोऽन्यदार्त्तं ततो होद्दालक आरुणि
रुपरराम ॥

जो पृथिवी में रहकर पृथिवी से अन्तर जिसको पृथवी नहीं जानती जिसका पृथिवी शरीर जो पृथिवी को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो जल में रहकर जलसे अन्तर जिसको जल नहीं जानता जिस का जल शरीर जो जल को भीतर होके यम (प्रेरणा) करताहै सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो अग्नि में रहकर अग्नि से अन्तर जिसको अग्नि नहीं जानती जिसका अग्नि शरीर जो अग्नि को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो अन्तरिक्ष में रहकर अन्तरिक्ष से अन्तर जिस को अन्तरिक्ष नहीं जानता

जिसका अन्तरिक्ष शरीर जो अन्तरिक्ष को भीतर
यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अ
है। जो वायु में रहकर वायु से अन्तर जिस को
नहीं जानता जिस का वायु शरीर जो वायु को भी
होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी
मृतहै। जो दिव में रहकर दिव से अन्तर जिसको
नहीं जानता जिस का दिव शरीर जो दिव को भी
होके यम (प्रेरणा) करताहै सो आत्मा अन्तर्यामी
मृत है। जो आदित्य में रहकर आदित्य से अन्तर जि
को आदित्य नहीं जानता जिस का आदित्य शरीर
आदित्य को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है
आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो दिशाओं में रह
दिशाओं से अन्तर जिस को दिशा नहीं जानतीं जि
का दिशा शरीर जो दिशाओं को भीतर होके य
(प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है
जो चन्द्र तारों में रहकर चन्द्र तारों से अन्तर जि
को चन्द्र तारे नहीं जानते जिस का चन्द्र तारे श
जो चन्द्र तारों को भीतर होके यम (प्रेरणा) कर
है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो आकाश
रहकर आकाश से अन्तर जिसको आकाश नहीं जा
ता जिसका आकाश शरीर जो आकाश को भीतर हो
यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अ
है। जो तम में रहकर तम से अन्तर जिस को तम न

ानता जिसका तम शरीर जो तमको भीतरहोके यम
प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।
ी तेज में रहकर तेज से अन्तर जिसको तेज नहीं
ानता जिसका तेज शरीर जो तेज को भीतर होके
म (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत
। इति अधिदैवतमथाधिभूतं। जो सम्पूर्ण भूतों में
कर सम्पूर्ण भूतोंसे अन्तर जिसको सम्पूर्ण भूतनहीं
ानते जिसका सम्पूर्ण भूत शरीर जो सम्पूर्ण भूतोंको
ीतर होके यम (प्रेरणा) करताहै सो आत्मा अन्तर्यामी
मृत है। इत्यधिभूतमथाध्यात्मंजोप्राण में रहकरप्राण
अन्तर जिसको प्राण नहीं जानता जिसका प्राण श-
ीर जो प्राण को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है
ो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो वाणी में रहकर
ाणी से अन्तर जिसको वाणी नहीं जानती जिसका
ाणी शरीर जो वाणी को भीतर होके यम (प्रेरणा)
रता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो नेत्र में
हकर नेत्र से अन्तर जिस को नेत्र नहीं जानता जिस
का नेत्र शरीर जो नेत्र को भीतर होके यम (प्रेरणा)
रता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो कान में
हकर कान से अन्तर जिसको कान नहीं जानता जिस
का कान शरीर जो कान को भीतर होके यम (प्रेरणा)
करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो मन में
रहकर मन से अन्तर जिसको मन नहीं जानता जिसका

मन शरीर जो मनको भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्य्यामी अमृत है। जो त्वचा में रहकर त्वचा से अन्तर जिसको त्वचा नहीं जानती जिसका त्वचा शरीर जो त्वचा को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो विज्ञान में रहकर विज्ञानसे अन्तर जिसको विज्ञान नहीं जानता जिसका विज्ञान शरीर जो विज्ञान को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो रेतस में रहकर रेतस से अन्तर जिसको रेतस नहीं जानता जिस का रेतस शरीर जो रेतसको भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। अदृष्टहै द्रष्टाहै अश्रुतहै श्रोताहै अमतहै मन्ता है अविज्ञात है विज्ञाता है इससे अन्य कोई द्रष्टा नहीं इससे अन्य कोई श्रोता नहीं इससे अन्य कोई मन्ता नहीं इससे अन्य कोई विज्ञाता नहीं सो यह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है इसके सिवाय नाशी है।

कस्मिन्नुखल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति। स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्य-स्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनो ऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं नतदश्नाति किञ्चन न तद

ति कश्चन एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचंद्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः । एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्द्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठंत्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्यायां यांञ्च दिशमन्वेति । एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशंसन्ति यजमानं देवा दर्वीं पितरोऽन्वायत्ताः । यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्ष सहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः । तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्टृ श्रुतं श्रोत्रमतं मन्त्रविज्ञातं विज्ञातृ नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रेतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥

आकाश किस में ओत और प्रोत है (अर्थात् कि
ताने बाने से बिना है)। याज्ञवल्क्य बोले हे गार्गि ! ब्रा-
ह्मण (ब्रह्मज्ञानी) लोग उसको अक्षर कहते हैं वह
स्थूल है न अणु है न ह्रस्व है न दीर्घ है न लोहित है
उसमें तेल है न छाया है न तम है न वायु है न आ-
काश है असंग है अरस है अगन्ध है अचक्षु है अश्रोत्र है
अवाक् है अमन है अतेजस्क है अप्राण है असुख है
कोई इन्द्रिय है न भीतर है न बाहर है न वह कुछ खाता
है न उसे कोई खाता है। इस अक्षर के प्रशासन से हे
गार्गि ! सूर्य और चन्द्रमा धरे हुए स्थित हैं इस अक्षर
के प्रशासन से हे गार्गि ! स्वर्ग और पृथिवी धरी हुई
स्थित है इस अक्षर के प्रशासन से हे गार्गि ! निमेष मुहू-
र्त्त दिन रात्रि पक्ष मास ऋतु वर्ष ये सब धरे हुए
स्थित हैं इस अक्षर के प्रशासन से हे गार्गि ! पूर्व में प-
श्चिम में और भी दिशाओं में श्वेतपर्वतों से नदियां
बहती हैं इस अक्षर के प्रशासन से हे गार्गि ! देने वाले
मनुष्य प्रशंसा पाते है यजमान के देवता दर्वी (होम)
के पितर इसी के प्रशासन से वशवर्ती हैं। इस अक्षर
के बिना जाने हे गार्गि ! जो इस संसार में होम क-
रता है यज्ञ करता है बहुत सहस्रों वर्ष तप करता है
उसका (फल) नाश युक्तही होता है इस अक्षर के
बिना जाने हे गार्गि ! जो इस संसारसे जाता है सो कृपण
है इस अक्षर को जानके हे गार्गि ! जो इस संसारसे जा-

है सो ब्राह्मण है। यह अक्षर हे गार्गि! अदृष्टहै द्रष्टाहै श्रुतहै श्रोताहै अमतहै मन्ताहै अविज्ञात है विज्ञाता इसके सिवाय कोई द्रष्टा नहीं इसके सिवाय कोई ता नहीं इसके सिवाय कोई मन्ता नहीं इसके सिवाय कोई विज्ञाता नहीं इसी अक्षर में हे गार्गि! आकाश त और प्रोत है॥

(तान् हतैः श्लोकैः पप्रच्छ) यथा वृक्षो रुपतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा। तस्य लोमानि र्णानि त्वगस्योत्पाटिकाबहिः॥ त्वच एवास्य रं प्रस्यन्दित्वच उत्पटः। तस्मात्तदातृणा ते रसो वृक्षाद्दिवाहतात्॥ मा छंसान्यस्यश ाणि किनाट छंस्नावतस्थिरं। अस्थीन्यंतर ारूणि मज्जा मज्जोपमा कृता॥ यद्वृक्षोवृ ो रोहतिमूलान्नवतरःपुनः। मर्त्यःस्विन्मृत्युना ःणः कस्मांमूलात्प्ररोहति॥ रेतस इति मावो जीवतस्तत्प्रजायते। धानारुह इव वै वृक्षो जसा प्रेत्य सम्भवः॥ यत्समूलमावृहेयुर्वृक्षं ुनराभवेत्। मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः क ान्मूलात्प्ररोहति॥ जात एव न जायते को ेनं जनयेत्पुनः। विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिु ः परायणं। तिष्ठमानस्य तद्विद इति॥

(याज्ञवल्क्य ने पूछा) जैसा वनस्पति वृक्ष
वैसाही पुरुष इसके लोम उसके पत्ते बाहर का
वैसीही उसकी भी छाल त्वचाही से पुरुष का
बहता है छालही से वृक्ष का (रस) गोंद मारे हुये
से रुधिर टपकता है कटेहुये वृक्ष से रस पुरुषके
वृक्षके टुकड़े वृक्षके स्थिर काष्ठमें लगी हुई जैसे
वैसेही पुरुष के स्नाव पुरुष के हड्डी वृक्ष के काष्ठ
और वृक्षकी मज्जाही से उपमा की गयी जो वृक्ष
वह जड़ से फिर नवीन उत्पन्न होताहै मृत्यु का
मरा पुरुष किस जड़ से उत्पन्न होता है रेतस
मत कहो वह तो जीते पुरुष के होता है वृक्ष
और साक्षात् (कलम) से भी उत्पन्न होता है ज
मेत वृक्ष को खोद डालने से फिर उत्पन्न नहीं हो
मृत्यु का काटा मरा पुरुष किस जड़ से उत्पन्न हो
जना हुआ नहीं जनाजाता फिर कौन इसे जने
देने वाले और तिष्ठमान (ब्रह्मवेत्ता) का पर
विज्ञान आनंद ब्रह्म तिस को जान ॥

अत्र पिता ऽपिता भवति माताऽमाता
अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः । अ
नोऽस्तेनो भवति भ्रूणहा ऽभ्रूणहा चाण्डा
चाण्डालः पौल्कसो ऽपौल्कसः श्रमणोऽश्र
स्तापसोऽतापसोनन्वागतं पुण्येनानन्वाग

क्षनतीर्णोहि तदासर्वाञ्छोकान्हृदयस्य भवति ॥
रे यहां (सुषुप्ति अवस्था में) पिता अपिता होता है
ा ाता अमाता लोक अलोक देवता अदेवता वेद अवेद
येतेन अस्तेन भ्रूणहा अभ्रूणहा चाण्डाल अचाण्डाल
पौल्कस अपौल्कस श्रमण अश्रमण तापस अतापस
होता है पुण्य और पापसे लिप्त नहीं होता उसअवस्था
ये हृदय के शोकों से छूट जाता है ॥
त यद्वैतन्न पश्यति पश्यन्ह्येतन्न पश्यति । नहि
द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते ऽविनाशित्वात् नतु
तद्द्वितीयमस्ति ततो ऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत् । य
द्वैतन्न जिघ्रति जिघ्रन्वैतन्न जिघ्रति नहि घ्रातुर्घ्रा
तेर्विपरिलोपो विद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्विती
यमस्ति ततो ऽन्यद्विभक्तं यज्जिघ्रेत । यद्वैतन्न
रसयते रसयन्वै तन्न रसयते नहि रसयितु रस
यतेर्विपरिलोपो विद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्वि
तीयमस्ति ततो ऽन्यद्विभक्तं यद्रसयेत् । यद्वैतन्न
वदति वदन्वै तन्न वदति नहि वक्तुर्वक्तेर्विपरि
लोपोविद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्वितीयमस्ति
ततो ऽन्यद्विभक्तं यद्वदेत् । यद्वैतन्न शृणोति शृ
ण्वन्वै तन्न शृणोति नहि श्रोतुःश्रुतेर्विपरिलोपो
विद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्वितीयमस्ति ततो

ऽन्यद्विभक्तं यच्छृणुयात् । यद्वैतन्न मनुते म-
नो वै तन्न मनुते नहि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो
विद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततो
न्यद्विभक्तं यन्मन्वीत । यद्वैतन्न स्पृशति
शन्वै तन्न स्पृशतिनहिस्प्रष्टुः स्पृष्टेर्विपरिलोपो ।
विद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततो
ऽन्यद्विभक्तं यत्स्पृशेत् । यद्वैतन्न विजानाति वि-
जानन्वैतन्न विजानाति नहि विज्ञातुर्विज्ञातेर्वि-
रिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति
ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजानीयात् ॥ यत्र वाऽन्य-
दिवास्यात्तत्रान्यो ऽन्यत्पश्येदन्यो ऽन्यज्जिघ्रे-
दन्यो ऽन्यद्रसयेदन्यो ऽन्यद्वदेदन्यो ऽन्यच्छृणु-
यादन्योऽन्यन्मन्वीतान्यो ऽन्यत्स्पृशेदन्यो ऽन्य-
द्विजानीयात् ॥ सलिलएकोद्रष्टा ऽद्वैतोभवत्येष
ब्रह्मलोकः सम्राडिति हैनमनुशशासयाज्ञवल्क्य
एषास्य परमागतिरेषास्य परमा सम्पदेषोऽस्य
परमोलोक एषो ऽस्य परमआनन्द एतस्यैवा-
नन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति ॥

(सुषुप्ति अवस्था में) जो द्वैत (दूसरे) को नहीं दे-
खाता द्रष्टा की दृष्टिका लोप नहीं होता क्योंकि अवि-

शी है वह द्वितीय नहीं है उससे दूसरा पृथक् भूत
हीं है जिसको देखे। जो दूसरे को नहीं सूंघता घ्राता
घ्राण का लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह
तीय नहीं है उससे दूसरा पृथक् भूत नहीं है जिसको
घे। जो दूसरे को स्वाद नहीं लेता स्वादलेनेवाले के
ाद का लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह
ीय नहींहै उससे दूसरा पृथक् भूत नहीं है जिसको
दले। जो दूसरे को नहीं कहता कहनेवाले के
ने का लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह
ीय नहीं है उससे दूसरा पृथक् भूत नहीं है जिसको
। जो दूसरे को नहीं सुनता श्रोता के श्रवण का
प नहींहोता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय नहीं है
ससे दूसरा पृथक् भूत नहीं है जिसको सुने। जो दू-
रे को नहीं मनन करता मन्ता के मनन का लोप
हीं होता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय नहीं है
ससे दूसरा पृथक् भूत नहीं है जिसको मननकरे। जो
सरे को नहीं स्पर्श करता स्पर्श करनेवाले के स्पर्श
ा लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय
हीं है उससे दूसरा पृथक् भूत नहीं है जिसको स्पर्श
रे। जो दूसरे को नहीं जानता ज्ञाताके ज्ञानका लोप
हीं होता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय नहीं है उस
दूसरा पृथक् भूत नहीं है जिसको जाने। जहां अन्य
व (सा) होय वहां अन्य अन्य को देखे अन्य अन्य

को सूंघे अन्य अन्य को स्वाद ले अन्य अन्य को न
अन्य अन्य को सुने अन्य अन्य को मननकरे ; ऐ
अन्य को स्पर्श करे अन्य अन्य को जाने । सां
(जैसा) एक द्रष्टा अद्वैत होता है याज्ञवल्क्य ने
हे सम्राड् ! । यही ब्रह्मलोक है यही इसकी परमगति
यही इसकी परम सम्पत् है यही इसका परम ल
है यही इसका परम आनन्द है इसी आनन्दका क
मात्र अन्य भूत उपजीवन करते हैं ॥

स यत्रैष चाक्षुषः पुरुषः पराङ्पर्य्या
तथारूपज्ञो भवति । एकी भवति न पश्यती
हुरेकी भवति न जिघ्रतीत्याहुरेकी भवति न र
यतइत्याहुरेकी भवति न वदतीत्याहुरेकी भव
न शृणोतीत्याहुरेकी भवति न मनुत इत्याहुरे
भवति न स्पृशतीत्याहुरेकीभवति न विजानाती
त्याहुस्तस्य है तस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते ते
प्रद्योततेनैष आत्मा निष्क्रामति ॥

वह चाक्षुष पुरुष जब पराङ् (बाहर को) पर्य्या
वर्त्तन करता है तब रूपज्ञ होता है जब एकहोता है न
देखता है जब एक होताहै नहीं स्वाद लेता है जब
होता है नहीं कहता है जब एक होता है नहीं सुनत
जब एक होता है नहीं मनन करता है जब एक हो

नहीं स्पर्श करता है जब एक होता है नहीं जानता
ऐसा कहते हैं उसके हृदय का अग्र उस एकी भाव
प्रद्योतन करता है उस प्रद्योतन से यह आत्मा नि-
ल जाता है ॥

स बा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः
णमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपो
यो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽतेजोमयः
ममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो धर्म्म
योऽधर्म्ममयः सर्व्वमयस्तद्यदेतदिदम्मयोऽदो
य इति यथाकारी यथाचारी तथा भवति
धुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति
ण्यः पुण्येन कर्म्मणा भवति पापः पापेन ॥

वह या यह आत्मा ब्रह्म विज्ञानमय मनोमय प्राणमय
क्षुमय श्रोत्रमय पृथिवीमय जलमय वायुमय आकाश-
तेजमय अतेजमय काममय अकाममय क्रोधमय
क्रोधमय धर्म्ममय अधर्म्ममय सर्व्वमय प्रत्यक्षमय
प्रत्यक्षमय जो जिसके करने का और आचरण का
ल है उस में वैसाही हो जाता है पुण्य करने से पु-
यात्मा पाप करने से पापी होता है पुण्य कर्म्म से पुण्य
पाप से पाप होता है ॥

यदासर्वे प्रमुच्यन्तेकामायेऽस्य हृदिश्रिताः ।

अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुत इ

जब इसके हृदय से सब काम (इच्छा) छुट
हैं यह मनुष्य यहांही अमृत होकर ब्रह्मको पाजाता

तद्यथाहि निर्ल्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ता
शयीतैव मेवेद छं शरीर छं शेते अथायमशरीरो
ऽमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव॥

जैसे सांप की केचली जुदा होके बांबी में मरी
सोती है वैसेही यह शरीर सोता है यह अशरीर
प्राण ब्रह्मही है तेजही है॥

अथह याज्ञवल्क्यस्य द्वेभार्य्ये बभूवतु
यी च कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादि
बभूव स्त्री प्रज्ञैव तर्हि कात्यायन्यथह याज्ञवल्क
ऽन्यद्वृत्तमुपाकरिष्यन्। मैत्रेयीति होवाच याज्ञ
वल्क्यः प्रव्रजिष्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि
हन्ततेऽनयाकात्यायन्यान्तं करवाणीति। सा
वाच मैत्रेयी यन्नुम इयं भगोः सर्वा पृथिवी वि
नपूर्णास्यात्स्यान्न्वहं तेनामृताऽऽहोनेतिनेति
वाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं
थैव ते जीवित छं स्यादमृतत्वस्य तु नाशासि
वित्तेनेति। सा होवाच मैत्रेयीयेनाहं नामृतास्यां

महं तेन कुर्य्यां यदेव भगवान्वेत्थ तदेव मे ब्रूहीति। स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया वै ख नो भवती सती प्रियमवृधद्धन्त तर्हि भवत्येत त्याख्यास्यामि तेऽव्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यास श्वेति। सहोवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियम्भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति न वा अरे पशूनां कामाय पशवः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पशवः प्रियाभवन्ति न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति न वा अरे लोकानां कामाय लोकाःप्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय

देवाः प्रिया भवन्ति न वा अरे वेदानां का
वेदाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय वेदाः
भवन्ति न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि
याणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रिय
भवन्ति न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्व्वं
भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति आ
वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्य
तव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते वि
इद ्ँ सर्वं विदितं। ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रा
ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्ष
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद
स्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद वेदास्तं
रादुर्योऽन्यत्रात्मनो वेदान्वेद भूतानि तं पर
र्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादा
न्यत्रात्मनः सर्व्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लो
इमे देवा इमे वेदा इमानि सर्व्वाणि भूतानीद
सर्व्वं यदयमात्मा। स यथा दुन्दुभेर्हन्यमान
न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय दुन्दुभे
ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः।
यथा शंखस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्

यादूग्रहणाय शंखस्य तु ग्रहणेन शंखध्म
वा शब्दो गृहीतः । स यथा वीणायै वाद्यमा
न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय वीणा
ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः ।
थार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्च
एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसित
द्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इ
हासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्रा
नुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टꣳ हुतमाशि
पायितमयञ्च लोकः परश्च लोकः सर्व्वाणि
भूतान्यस्यैवैतानि सर्व्वाणि निश्वसितानि ।
यथा सर्व्वासामपाꣳ समुद्र एकायनमेवꣳ सर्वे
ꣳ स्पर्शानां त्वगेकायनमेवꣳ सर्वेषाꣳ रसा
जिह्वैकायनमेवꣳ सर्वेषां गन्धानां नासिकैका
नमेवꣳ सर्वेषाꣳ रूपाणां चक्षुरेकायनमेवꣳ
र्व्वेषाꣳ शब्दानाꣳ श्रोत्रमेकायनमेवꣳ सर्व्वे
ꣳ संकल्पानां मन एकायनमेवꣳ सर्व्वासां
विद्यानाꣳ हृदयमेकायनमेवꣳ सर्व्वेषां कर्म्म
णाꣳ हस्तावेकायनमेवꣳ सर्व्वेषामानन्दानामु
स्थ एकायनमेवꣳ सर्व्वेषां विसर्गाणां पायु

रेकायनमेवछंसर्व्वेषामध्वनांपादावेकायनमेथ
सर्व्वेषां वेदाना छं वागेकायनं । स यथा सैंद्
घनो ऽनन्तरोऽब्राह्यः कृत्स्नोरसघन एवैवं
अरे ऽयमात्मा ऽनन्तरो ऽबाह्यः कृत्स्नःप्रज्ञ
घन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवा
नश्यति न प्रेत्य सञ्ज्ञाऽस्तीत्यरे ब्रवीमीति
वाच याज्ञवल्क्यः । सा होवाच मैत्रेय्यत्रै
भगवान्मोहान्तमापीपिपन्न वा अहमिमं
नामीति स होवाच न वा अरे ऽहं मोहं ब्र
विनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्म
यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्य
तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतर छं रसय
तदितर इतरमभिवदति तदितर इतर छं शृ
ति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरछंस्पृश
तदितर इतरं विजानाति यत्रत्वस्य सर्व्वमा
त्माभूत्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन छं शृणुयात्तत्के
कं मन्वीत तत्केनक छं स्पृशेत्तत्केन कं विजा
याद्येनेद छं सर्व्वं विजानाति तं केन विजानी
त्सएष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्यतेऽश
र्य्यो नहि शीर्य्यते ऽसंगो नहि सज्यते ऽसितो

थते न रिष्यति विज्ञातारमरे केन विजानी
द्रित्युक्तानुशासनासि मैत्रेय्येतावदरे खल्वमृ
वमितिहोक्त्वा याज्ञवल्क्यो विजहार ॥

याज्ञवल्क्यके दो स्त्री थीं मैत्रेयी और कात्यायनी मै-
त्रेयी ब्रह्मवादिनी थी कात्यायनी स्त्रियों कीसी बुद्धि
रखती थी याज्ञवल्क्य (गृहस्थाश्रम से) दूसरे आश्रम
(परिव्राजक) में चलनेको हुए बोले हे मैत्रेयी! मैं इस
गृह से परिव्रजन करूंगा तू चाहे तो तेरा कात्यायनी
से विभाग करदूं वह मैत्रेयी बोली हे स्वामी! यह पृथ्वी
धन से पूर्ण होगी तो मैं क्या अमृता हो जाऊंगी याज्ञ-
वल्क्य बोले कि नहीं जैसा धनियों का जीवन होता है
वैसाही तेरा भी होगा धनसे अमृतत्व की आशा नहीं
है। मैत्रेयी बोली जिससे मैं अमृता न हूंगी उसे मैं क्या
करूंगी स्वामी जो आप जानते हैं सोही मुझको कहिये
यह याज्ञवल्क्य बोले निश्चय कर हमको प्रिया होती
हुई तू अब प्रीति को बढ़ाती है तेरेलिये कहता हूं मेरे
कहने में मनलगा। वह बोले अरी पतिके कामके लिये
पति प्रिय नहीं होता अपने कामके लिये पति प्रिय
होता है अरी स्त्री के कामके लिये स्त्री प्रिय नहीं होती
अपने काम के लिये स्त्री प्रिय होती है अरी पुत्रों के
काम के लिये पुत्र प्रिय नहीं होते अपने काम के लिये
पुत्र प्रिय होते हैं अरी धन के काम के लिये धन प्रिय

नहीं होता अपने कामके लिये धन प्रिय होता है
पशुओं के कामके लिये पशुप्रिय नहीं होते अपने
के लिये प्रिय होते हैं अरी ब्रह्म के काम के लिये
प्रिय नहीं होता अपने काम के लिये प्रिय होताहै
क्षत्र के काम के लिये क्षत्र प्रिय नहीं होता अपने
के लिये प्रिय होता है अरी लोकों के काम के
लोक प्रिय नहीं होते अपने काम के लिये प्रिय है
अरी देवताओं के काम के लिये देवता प्रिय नहीं
अपने काम के लिये प्रिय होतेहैं अरी वेदों के काम
लिये वेद प्रिय नहीं होते अपने काम के लिये
होते हैं अरी (पञ्चमहा) भूतों के काम के लिये
ञ्चमहा) भूत प्रिय नहीं होते अपने काम के
प्रिय होते हैं अरी सब के काम के लिये सब प्रिय
होते अपने काम के लिये प्रिय होते हैं अरी आत्मा
ष्टव्य श्रोतव्य मन्तव्य निदिध्यासितव्य है अरी मैं
निश्चय करके आत्मा के देखने सुनने मानने
अच्छी तरह जानने से यह सब जाना जाता है।
जाति उसको तिरस्कार कर देती है जो आत्मा से
सरे में ब्रह्म जानता है क्षत्र जाति उसको तिरस्
कर देती है जो आत्मा से दूसरे में क्षत्र जानता है लो
उसको तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे
लोक जानता है देवता उसको तिरस्कार कर देते
जो आत्मा से दूसरे में देवता जानता है वेद उस

तिरस्कार करदेते हैं जो आत्मा से दूसरे में वेद जानता है (पञ्चमहा) भूत उसको तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे में (पञ्चमहा) भूत जानता है सब उसको तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे में सब जानता है यह ब्रह्म यह क्षत्र ये लोक ये देवता ये वेद ये सब (पञ्चमहा) भूत यह सब यही आत्मा है वह जैसे बजायी जाती दुंदुभी के बाहरके शब्दको ग्रहण न कर सकिये पर दुंदुभी के ग्रहण करने से बजायी जाती दुंदुभी का शब्द गृहीत होजाता है। वह जैसे बजाये जाते शंख के बाहर के शब्द को ग्रहण न कर सकिये पर शंख के ग्रहण करने से बजाये जाते शंख के शब्द गृहीत हो जाताहै। वह जैसे बजायी जाती बीना के बाहर के शब्द को ग्रहण न कर सकिये पर बीन के ग्रहण करने से बजायी जाती बीन का शब्द गृहीत हो जाता है। वह जैसे गीली लकड़ी के संयोग से अग्नि में से धुआं निकलता है वैसेही अरी इस बड़े भूत का निश्वसित है यह ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्वण वेद इतिहास पुराण विद्या उपनिषद् श्लोक सूत्र अनुव्याख्या व्याख्या इष्ट (यज्ञ) हुत (होम) खाया हुवा पीया हुवा यह लोक परलोक सब भूत इसी का यह सब निश्वसित है। वह जैसे सब जलों का समुद्र एकायन (अयन--ठिकाना) है सब स्पर्शों का त्वचा एकायन है सब रसों का जिह्वा एकायन है सब गन्धों का

नासिका एकायन है सब रूपों का चक्षु एकायन है सब
शब्दों का कान एकायन है सब संकल्पों का मन एका
यन है सब विद्याओं का हृदय एकायन है सब कर्मों
का हाथ एकायन है सब आनन्दों का उपस्थ एकायन
है सब विसर्गों का पायु एकायन है सब पथों का पैरों
एकायन है सब वेदों का वाक् एकायन है। वह जैसे
सैन्धव घन भीतर और बाहर संपूर्ण रस का समूहही है
अरी ऐसेही यह आत्मा भीतर और बाहर प्रज्ञान घनये
है इन भूतों से उठ कर उन्हीं के पीछे होकर
को प्राप्त होता है नाश होने पर संज्ञा नहीं
मैं कहता हूं यह याज्ञवल्क्य ने कहा। वह री बोली
हे भगवन्! यहां आपने मुझको मोह के मध्य
दिया मेरी समझ में यह नहीं आता वह बोले अरी
मोहकी बात नहीं कहताहूं अरी यह आत्मा अविना
है और अनुच्छित्तिधर्म्मा है (जिसका कभी उच्छेद नहीं
जहां द्वैत सा होता है वहां एक दूसरे को देखता है वहां
एक दूसरे को सूंघता है वहां एक दूसरे का रस लेता
वहां एक दूसरे का अभिवादन करता है वहां एक दूसरे
की सुनता है वहां एक दूसरे का मनन करता है
एक दूसरे को छूताहै वहां एक दूसरे को जानताहै
इस का सम्पूर्ण आत्माही होगया तब किस से किस
देखेगा तब किससे किसको सूंघेगा तब किससे किस
रस लेगा तब किससे किसका अभिवादन करेगा

हैं:ससे किसको सुनेगा तब किससे किसका मनन क-
गा तब किससे किसे छूएगा तब किससे किसे जा-
गा जिससे यह सम्पूर्ण जाना जाता है उसको किससे
निये वह आत्मा यह नहीं यह नहीं अगृह्यहै ग्रहण
होता अशीर्य है शीर्य नहीं होता (नहीं टूटता)
ह सगहै साथ नहीं किया जाता असित (अबद्ध) है दुःखी
हीं होता नष्ट नहीं होता अरी विज्ञाता को किससे जा-
धन्ये यह तुझे सब शिक्षा देदी अरी मैत्रेयी इतनाही
तत्व है यह कहके याज्ञवल्क्य परिव्राजकता को धा-
करते भये॥

कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषत्॥

ऋतुरस्म्यार्तवोऽस्म्याकाशाद्योनेः सम्भूतो
परेतः संवत्सरस्य तेजो भूतस्य भूतस्यात्मा
तस्य भूतस्य त्वमात्मासि यस्त्वमसि सोऽहम
म तमाहकोऽहमस्मीति सत्यमिति ब्रूयात् किं
तद्यत्सत्यमिति यदन्यद्देवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च
त्सदथ यद्देवाश्च प्राणाश्च तत्स्यं तदेतया वा
भिव्याह्रियते सत्यमित्येतावदिदं सर्वमिदंसर्व
सीत्येवैनं तदाह॥

मैं ऋतु हूं मैं वह हूं जो ऋतु में है मैं आकाशयोनि
हुवा हूं स्वयं प्रकाश ब्रह्म संवत्सर का वीर्य चतु-

विंध प्राणियों का तेज प्राणी और अप्राणियों का
पंच भूतों का आत्मा तू आत्मा है जो तू है सो
हूं उससे कहता है मैं कौन हूं तू सत्य है ऐसा कहे
सत्य क्या है इन्द्रियों से और प्राणों से जो अन्यत्
सत् है इन्द्रियां और प्राण त्य अर्थात् वह है इस कै
से सत्य कहा जाताहै जो कुछ कि यह सब है यह
तू है ऐसा वह उसको कहता है ॥

मैत्री उपनिषत् ॥

भगवन्नस्थिचर्मस्नायुमज्जमांसशुक्रशो
श्लेष्माश्रुदूषिका विण्मूत्रपित्तकफसंघातेदुर्ग
निःसारेऽस्मिञ्छरीरे किंकामोपभोगैः ॥

हे भगवन्! इस अस्थि चर्म स्नायु मज्जा मांस
शोणित श्लेष्मा अश्रुदूषिका (आंख का मैल)
मूत्र पित्त कफ के संघात दुर्गन्धि निःसार शरीर में
भोगों की क्या चाह हो ॥

अथ यत्र द्वैतीभूतं विज्ञानं तत्रहि शृणो
पश्यति जिघ्रति रसयति चैव स्पर्शयति स
त्मा जानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्यक
कर्मनिर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं
तदवाच्यं ॥

जहां विज्ञान द्वैती होता है वहां वह सुनता है देखता है सूंघता है रस लेता है छूता भी है आत्मा सब जानता है जहां विज्ञान अद्वैती होता है वहां कार्य कारण कर्म से निर्मुक्त है निर्वचन है अनौपम्य है निरुपाख्य है वह क्या है अवाच्य है ॥

वह्नेश्च यद्वत् खलु विस्फुलिंगाः सूर्यान्मयूखाश्च तथैव तस्य। प्राणादयो वैपुनरेवतस्मादुच्चरन्तीह यथाक्रमेण ॥

अग्नि की जैसे चिनगारियां और सूर्य की जैसे किरणें वैसेहीप्राणादि यथाक्रम फेरफेर उससे निकलतेहैं॥

ब्रह्मणो वाव्हैतत्तेजः परस्यामृतस्याशरीरस्य यच्छरीरस्यौष्ण्यमस्यैतत् घृतम् ॥

शरीर का औष्ण्य अमृत अशरीर परब्रह्म का तेज है यह उसका घी है ॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमांगतिं ॥

जब पांचों ज्ञानेन्द्रिय मन के साथ रहें और बुद्धि चेष्टा न करे उसीको परम गति कहते हैं ॥

यथा निरिन्धनो वह्निः स्वयोनाउपशाम्यते। तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोना उपशाम्यते॥ स्व

योना उपशान्तस्य मनसः सत्यकामतः ।
यार्थं विमूढस्यानृताः कर्मवशानुगाः ॥ चित्त
हि संसारं तत्प्रयत्नेनशोधयेत् । यच्चित्तस्तन्
भवति गुह्यमेतत् सनातनं ॥ चित्तस्य हि प्र
देन हन्ति कर्म शुभाशुभं । प्रसन्नात्मात्मनिस्थि
त्वा सुखमव्ययमश्नुते ॥ समासक्तं यथा
जन्तोर्विषय गोचरे । यद्येवं ब्रह्मणि स्या
को न मुच्येत बन्धनात् ॥ मनो हि द्विविधं
शुद्धञ्चाशुद्धमेव च । अशुद्धं काम सङ्क
शुद्धं काम विवर्जितं ॥ लयविक्षेपरहितं मन
त्वासुनिश्चलं । यदायात्यमनीभावंतदातत्प
पदं ॥ तावन्मनो निरोद्धव्यं हृदियावत् क्षयंग
एतज्ज्ञानं च मोक्षञ्च शेषान्ये ग्रंथविस्तरा ॥
समाधिनिर्द्धौतमलस्यचेतसो निवेशितस्यात्म
यत् सुखं भवेत् । नशक्यते वर्णयितुं गिरा
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥ अपामापोऽ
रग्नौ वा व्योम्निव्योमनलक्षयेत् । एवमन्त
यस्यमनः स परिमुच्यते ॥ मन एव मनुष्या
कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धाय विषयासंगि
मोक्षो निर्विषयं स्मृतम् ॥

जैसे निरिन्धन वह्नि अपनी योनि ... को
स होती है । वैसे ही वृत्ति के क्षय से चित्त ... नी
नि में उपशम पाता है ॥ इन्द्रियार्थ से मूढ़ हुये मन
कर्म वश अनुगामी भूठी प्रवृत्तियां सत्य काम से
पनी योनि में उपशम पाने पर नहीं रहतीं । चित्त
संसार है यत्न करके उसे शोधे । जो चिन्तन करता
उसी में तन्मय हो जाताहै यही सनातन गुह्य है ॥
त्तही के प्रसाद से शुभाशुभ कर्मों को नाश करता
प्रसन्नात्मा आत्मा में स्थिर हो के अव्यय सुख को
ाप्त होता है ॥ जन्तुवों का चित्त जैसा विषयों के ग्र-
णा में समासक्त होता है । यदि ऐसा ब्रह्ममें होवे कौन
न से न छूटे ॥ मन दो प्रकार का कहाहै शुद्ध और
शुद्ध । अशुद्ध कामसम्पर्क से और शुद्ध काम विवर्जि-
॥ लय और विक्षेप से रहित मनको निश्चल करके ।
ब अमनीभाव होताहै तब उस परमपदको प्राप्तहोता
॥ जबतक हृदय में क्षय न होजाय तब तक मन का
निरोध करना चाहिये । यही ज्ञानहै यही मोक्षहै शेष
केवल ग्रंथ विस्तार है ॥ चित्तको जिसका मल समाधि
से धो गया है और आत्मा में निवेशित होगया है जो
सुख होता है वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती
उसको । वह आपही अन्तःकरण से ग्रहण कियाजाता
है ॥ जैसे पानी में पानी अग्नि में अग्नि आकाश में
आकाश न देख सकिये । ऐसे ही जिस का मन अन्त-

गत्त वह छूटता है ॥ मनुष्यों का मन ही बन्ध मोक्ष का कारण है । विषय के संग बन्ध और मोक्ष सुना है ॥

इति

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ानेमें
सन् १९०८ ई०



ॐ अथ

अब इस भाषाभाष्यकार कृत सर्व उपनिषद् आदिकों का प्रणवोपासन विचार देखावने के अर्थ संग्रहनाम प्रकरण, प्रारम्भकरतेहैं ॥

सूचना ॥

सौम्य ! यह मांडूक्यनाम उपनिषद् केवल प्रणवकी व्या- अरु ब्रह्म आत्माकी अभेद एकताका बोधक अरु संन्या- का उपास्य इष्ट होनेसे सर्व उपनिषदोंका सारहै, अतएव कों से अरु तिनके फलादिकों से उपराम चित्त वैराग्य मुमुक्षुओं को उसकी उपासना अरु अर्थविचार अवश्य है, क्योंकि ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ यह सर्वोत्तम आलम्बन य) है "एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनंपरम्, एतदालम्बनं ब्रह्मलोके महीयते" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे। एतदर्थ यहां पनिषद्की अरु तदुपरि श्रीगौडपादाचार्यकृत कारिकाकी की समाप्तिके पश्चात् अवसर पायके अन्य उपनिषदोंमें णवोपासना अरु तिसका फल अरु प्रणवकी महिमा कही जिसप्रकार हिरण्यगर्भादिक सातो सिद्धान्तकारोंने अपने सिद्धान्तानुसार प्रणवोपासना कहीहै अरु जिसप्रकार ऋषियोंने मात्राके विचार कहे हैं अरु प्रणवके जो १० नाम अरु तिनकी व्याख्या अरु जिसप्रकार अकारादि मात्रा- न्य चिंतन से सर्वाधिष्ठान निर्विशेष शुद्ध प्रणवके लक्ष्य आत्माका लक्ष्य कराया है सो इत्यादि सर्व अरु अन्य पित विचार, जो प्रणव विषयक है, तुम्हारे प्रति संक्षेप- हताहौं क्योंकि यहां प्रणव विषयक विचार कहने का अवकाश है, तिसको भी सावधानहोय श्रवण करो ॥

ईशावास्योपनिषद्गतॐङ्कारोपासना

ॐक्रतोस्मरकृतछंस्मर क्रतोस्मरकृतछंस्मर ॥

हे सौम्य ! अब प्रथम ईशावास्य नामक शुक्लयजुर्वेदीय संहितोपनिषद्के सप्तदशवें १७ वें मन्त्रके उत्तरार्द्धविषे प्रणवोपासना पूर्वक निष्काम कर्म्मकर्त्ता पुरुषके अर्थ वा वर्णत्रयी के मनुष्य जो वेदाध्ययन के अधिकारी हैं तिनके अर्थ उनके अन्तकाल, कहिये देहावसानसमय, ॐकार के स्मरणकरनेके अर्थ वेदकी वा वेद द्वारा ईश्वरकी आज्ञाहै। अरु तिस आज्ञाके अनुसार उक्त प्रकारके उत्तम विद्वान् पुरुष अपने देहावसान समय अपने मनको जो शिक्षा करते हैं तिसको श्रवण करो । तथाच श्रुतिः "ॐक्रतोस्मरकृतछंस्मर क्रतोस्मरकृतछंस्मर" वे विद्वान् अपने मनसे कहते हैं, हे निरन्तर संकल्प विकल्प के करनेहारे महाचंचल संकल्परूप मन ! तू इतनेकालपर्य्यन्त असंख्य संकल्पोंको करताही रहा, अरु उभयलोकके विषयोंको अरु शास्त्रानुसार कर्म्मों के होनहार फलको स्मरण करताही रहा सो अस्तु, परन्तु अब जो तुझको स्मरण करने योग्यहै तिसी के स्मरण करनेका समय आय उपस्थितहुआहै, अरु जिसकी तैंने सम्यक्प्रकार उपासना, कहिये जप अरु अर्थकी भावना, कियाहै तिस ॐकारका, जो ब्रह्मका प्रतीकहै, स्मरण कर, क्योंकि जिस समय के साधने के अर्थ बाल्यावस्थासेही उपासनादिक कियेहैं, सो समय अब प्राप्तहै। अतएवअबतू अपनेपरम कल्याणार्थॐकारका स्मरणकर । अरु हे मन! बाल्यावस्था (यज्ञोपवीत संस्कार) [illegible] अद्यावधि पर्य्यन्त जो तूने कर्म्मानुष्ठान कियाहै, अर्थात् [illegible] गायत्री अग्निहोत्रादि निष्काम कर्मोंके करनेसे अशुभ [illegible] करते नहीं "एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्तिनकर्म्म [illegible] प्रमाणसे । तिन कर्मोंको स्मरणकर । अर्थात् [illegible] कि देहत्यागोत्तर अवगति प्राप्तहोने

कठवल्लीउपनिषद्गतप्रणवोपासना ॥

सर्व्वेवेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्व्वाणिचय द्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यंश्चरन्ति तत्तेपदंसंग्रहेणब्रवीम्योमित्येतत् ॥ एतद्ध्येवाक्षरम्ब्रह्म एतदेवाक्षरम्परम् । एतद्ध्येवाक्षरंज्ञात्वा योयदिच्छति तस्य तत् ॥ एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् । एतदालम्बनंज्ञात्वा ब्रह्मलोकेमहीयते ॥

काभय होय, अतएवतू अपनेकिये सर्व्वोत्तम कर्म्म उपासना को इस उपस्थित समय स्मरणकर समयको साध निर्भयहो ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार मनुष्यवर्णत्रयी को सर्वकाल परमोत्तम वेदोक्त कर्म्म उपासना करके अन्तसमय तिनके स्मरण से अवगति से निर्भयहोय परमोत्तम गतिको प्राप्तहोना योग्यहै यह शुक्लयजुमाध्यन्दिनि संहिताकी अन्तिम आज्ञा है । अरु इस मन्त्रार्थ में जो स्मरण करनेको दोबार कहाहै सो स्मरणके आदरार्थ है,अतएव अपने कल्याणार्थ ॐकारका स्मरण विचार अवश्यही कर्त्तव्यहै ॥ इति सिद्धम् ॥

अथ कठवल्लीउपनिषत्सम्बन्धिप्रणवविचार ॥

हे सौम्य ! अब कठवल्ली उपनिषद्विषे जो ॐकारोपासनाकी प्रशंसा महिमा कही है तिसको भी श्रवण करो । हे प्रियदर्शन ! कोई एक उद्दालक नाम ऋषि के नचिकेता नामबालक पुत्र सर्व्वोत्तमाधिकारी ने आत्मदेव के जानने की इच्छा धारके तीसरे वरदान करके अपने आचार्य भगवान् वैवस्वत (यमराज,वा मृत्यु) महाराजसे प्रार्थना किया कि हे भगवन् ! "अन्यत्रधर्म्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् । अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद" जो शास्त्रोक्त धर्म्म अरु तिसके स्वर्गादिक फल

से, अरु तिनके कारक साधनों से पृथक्हैं, अरु तैसेही शास्त्रकरके कहे अधर्म्म अरु तिनके नरकादिफल अरु कारक साधनों से पृथक् है। अरु तैसेही इन कार्य्य अरु कारणों से भी अन्यहै, अरु तैसेही भूत भविष्यत् अरु वर्त्तमान कालत्रयसे भी जो पृथक् है, अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान यह तीनकाल, अरु कार्य्य कारण देश, अरु धर्म्म अधर्म्म अरु तिनके फल अरु साधन, यह वस्तु। इसप्रकार उक्त देश काल वस्तुसे पृथक् हुआ, इन करके परिच्छेद (भेद) को प्राप्त होतानहीं, ऐसा जो सर्व व्यवहारके विषय से रहितहै, अर्थात् जो प्रमाणादिक अरु बुद्ध्यादिक किसीका भी विषय नहीं; तिस वस्तुको आप देखतेहो अर्थात् साक्षात् यथार्थ अनुभव करतेहो अतएव सो वस्तु मेरेप्रति कहो॥ हे सौम्य! इस प्रकार जब नाचिकेता ने आत्मजिज्ञासापूर्वक मृत्यु भगवान् से विनय किया तब तिसको श्रवणकर प्रथम निर्विशेष आत्मतत्त्व न कहके तिसकी प्राप्तिमें मुख्य आलम्बन जो आत्माका प्रतीक ॐकार तिसकी उपासनाकी अरु तिसके ज्ञानकी महिमा कहते हुये॥ मृत्युरुवाच " सर्व्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्व्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यञ्चरन्ति तत्तेपदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥ एतद्ध्येवाक्षरंब्रह्म एतदेवाक्षरम्परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्यतत्॥ एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते " १५, १६, १७, ॥ हे नाचिकेतः! ऋगादि सर्व वेद, अर्थात् ऋगादि वेदके एक देश ब्रह्मविद्या रूप उपनिषद्, जिस पावने योग्य पदको अविभाग से, एकही निश्चयसे, प्रतिपादन करते हैं॥ हे सौम्य! यहां वेद शब्दके अर्थ से वेदके एक देशरूप उपनिषद् का ग्रहण है, तिसका यह तात्पर्य है कि उपनिषद् जो हैं सो ज्ञानके साधन होनेकरके तिस (प्रणव के लक्ष्य) परमात्म पदसे साक्षात् सम्बन्धवाले हैं। अर्थात् उपनिषदोंके महावाक्यार्थ ज्ञानसे परमात्मा की अपरोक्ष साक्षात् अनन्यप्राप्ति

होतीहै, अतएव उपनिषद् परमात्मपद से साक्षात् सम्बन्धवाले हैं। अरु जिसकी प्राप्तिकेअर्थ सर्वविद्वान् तपको (स्वधर्म्मानुष्ठानको) कहतेहैं। अथवा सर्वतपआचरण करनेवाले तपस्वी जिसको कहते हैं। अरु जिसकी इच्छाधारके गुरुकुलवासादि ब्रह्मचर्य्यको आचरतेहैं। अर्थात् जिस प्रणवकेलक्ष्य परमात्मपदकी प्राप्तिकी इच्छावाले श्रद्धासम्पन्नहुये गुरुकुल में वासकर उपनिषदों का अध्ययनादि रूप ब्रह्मचर्य करते हैं। अरु जिस पद के जानने की इच्छा तूभी करताहै। हे नचिकेतः! तिसपदको तेरेअर्थ संक्षेपमात्र कहताहौं सोयह ॐकारही है। अर्थात् हे नचिकेतः! जिस पदको जाननेकोतू इच्छताहै तिसका प्रतीक (प्रापक) ॐकारहै, क्योंकि वह ॐकारकालक्ष्य अरु ॐकाररूप प्रतीकवालाहै। ताते यह ॐ अक्षर सगुण वा त्रिमात्रिक होने से अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्म है, अरु यही अक्षर अपने लक्ष्यरूपसे गुण वा मात्रासे रहित अविनाशी अमात्रिक निर्गुण पर (श्रेष्ठ) ब्रह्महै। एतदर्थ इस उक्त अक्षरको सम्यक्प्रकार जानके जो उपासनाकरता है सो पर वा अपर जिस ब्रह्मको प्राप्तहोनेको इच्छताहै तिसको सोई होता है। अर्थात् जो ब्रह्मलोककी इच्छाधारके त्रिमात्रिक प्रणवकी समाहित चित्त ब्रह्मचर्य्यादि साधनपूर्वक जपादिरूपसे उपासना करता है तिस को सोई ब्रह्मलोक होता है। अरु जो मुमुक्षु मोक्षकी इच्छाधार के त्रिमात्रिक प्रणवके विचारपूर्वक तिसके अधिष्ठान अमात्रिक आत्माका ब्रह्मकेसाथ अभेद अभ्यास वा निदिध्यासन करता है तिसको प्राप्तहोताहै। अतएव हेनचिकेतः! ब्रह्मलोक प्राप्तिवाले को अन्य अज्ञादि आलम्बनों से इस त्रिमात्रिक प्रणवोपासना रूप आलम्बन श्रेष्ठ है, क्योंकि प्रणवोपासना के आलम्बन से ब्रह्मलोक को प्राप्तहुआ विद्वान् ब्रह्मा से प्रणव के लक्ष्य का ज्ञान पाय पुनरावृत्ति से रहित मोक्ष होताहै। अरु परब्रह्मप्राप्ति की इच्छावाले को इस ॐकारकी विचाररूप उपासना अन्यसर्व साधनों के मध्य प्रशंसाकरनेयोग्य परमोत्तम आलम्बन (आश्रय)

अथ प्रश्नोपनिषद्गतप्रणवोपासना ३ ॥

स योहवैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमंवावसतेन लोकं जयतीति ॥

हे, मुमुक्षुको परमात्म प्राप्तिके अर्थ इस ॐकारकी उपासना से अधिकश्रेष्ठ आलम्बन कोईनहीं, एतदर्थ इस आलम्बनको सम्यक्प्रकार जानके उपासनाकरनेवाला ब्रह्मलोकबिषे महिमा को पावताहै, अर्थात् जो ब्रह्मलोक की प्राप्तिकी इच्छासे त्रिमात्रिक ॐकारकी उपासना करताहै सो तिसके आश्रय ब्रह्मलोकमें जाय ब्रह्मावत् पूजनीय होता है । अरु जो साक्षात् ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ इस ॐकाररूप प्रतीकद्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्मकी उपासना करता है सो ब्रह्मरूप लोकबिषें अनन्यहुआ तिसकी महिमाको प्राप्तहोताहै "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" हे सौम्य ! उक्तप्रकार मुमुक्षु के अर्थ अमृतत्व प्राप्तिमें ॐकारकी उपासनारूप आलम्बन से इतर सर्वोत्तम आलम्बन कोई नहीं । ऐसा कठवल्ली उपनिषद् की श्रुतिवाक्य प्रमाणसे सिद्धही है । अतएव मुमुक्षु करके अपने मोक्षार्थ सर्वोत्तम परमश्रेष्ठ ॐकारोपासनाकाही आश्रयकरना उचितहै ॥ इति ॥ २ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत ॐकारोपासना ३ ॥

हे सौम्य ! अब अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् में जिसप्रकार प्रश्नपूर्वक ॐकारके पर अरु अपर दो भेद अरु क्रमसे मात्राओं के उपासकोंकी गति कही है, तिसको भी संक्षेपमात्र कहताहौं सावधानहोय श्रवणकरो ॥ हे प्रियदर्शन ! प्रश्नोपनिषद्के पञ्चम प्रश्नबिषे सत्यकाम नामक ऋषि ने अपने आचार्य्य पिप्पलाद नामकऋषिसे प्रश्नकिया है कि "सयो ह वैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमाभिध्यायीत, कतमं वावसतेन लोकं जयतीति"

तस्मैसहोवाच । एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥

हे भगवन् (पूजनेयोग्य) मनुष्यों के मध्य सो आश्चर्य्यवत् है जो कोई एक मनुष्य अपने मरण पर्य्यन्त सम्यक् प्रकार सर्व धर्म्माचरण अरु इन्द्रियों के अरु मनके निग्रहवाला हुआ समाहित चित्ततासे ॐकारके अभिध्यान से 'कर्म्मों के फल जे स्वर्गादि अनेक लोक हैं तिनमें से कौन से लोक का जयकरता है' अर्थात् वह प्रणवोपासक कौनसे लोक को प्राप्त होता है, सो आप कृपा करके कहिये॥ हे सौम्य! इस प्रकार जब सत्यकामनामवाले ऋषि ने अपने आचार्य्य पिप्पलाद ऋषि से प्रश्न किया तब सो उत्तर कहतेहुये " तस्मैसहोवाच । एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति " पिप्पलाद मुनि तिस प्रश्नकर्ता सत्यकाम प्रति कहतेहुये हे सत्यकाम! यह जो सत्य अक्षर पुरुषनामवाला परब्रह्म है अरु जो प्रथम उत्पन्न हुआ प्राणनामक अपर ब्रह्महै, सो उभय प्रकारका ब्रह्म ॐकार ही है। अथवा ॐकारका लक्ष्य सर्व्वाधिष्ठान अमात्रिक परब्रह्म है, क्योंकि मात्रारूप उपाधि से पर (पृथक्) है ताते वा मात्रा वाले सोपाधि ब्रह्म से श्रेष्ठ है ताते। अरु तिसका प्रतीक होनेसे त्रिमात्रिक अक्षर वर्णात्मक ॐकार अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्म है। अरु इस ॐकार अक्षर (वर्ण) को जो ब्रह्मत्व है सो 'जैसे शालिग्राम नामक पाषाण को विष्णु (हिरण्यगर्भ) का प्रतीक होनेसे उसको भी विष्णुपना है, तैसे है, ताते इस ॐकार को निरुपाधि निर्विशेष सर्व्वाधिष्ठान परब्रह्म का प्रतीक होने से यह अपर ब्रह्म है, तिसकी अकारादि मात्रा की जाग्रदादि अवस्थादि रूप पादों के साथ एकताकर प्रथममात्रा को दूसरी में अरु दूसरी को तीसरी में, अरु तीसरी को, तीनोंकी अपेक्षा से जो सर्व्वाधिष्ठान चतुर्थ शिवहै तिसमें लयकर तदाकार अनन्य स्थिति से ए-

अथ प्रश्नोपनिषद्गतप्रणवोपासना ३ ॥

स योहवैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमंवावसतेन लोकं जयतीति ॥

हे, मुमुक्षुको परमात्म प्राप्तिके अर्थ इस ॐकारकी उपासना से अधिकश्रेष्ठ आलम्बन कोईनहीं, एतदर्थ इस आलम्बनको सम्यक्प्रकार जानके उपासनाकरनेवाला ब्रह्मलोकबिषे महिमा को पावताहै, अर्थात् जो ब्रह्मलोक की प्राप्तिकी इच्छासे त्रिमात्रिक ॐकारकी उपासना करताहै सो तिसके आश्रय ब्रह्मलोकमें जाय ब्रह्मावत् पूजनीय होता है। अरु जो साक्षात् ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ इस ॐकाररूप प्रतीकद्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्मकी उपासना करता है सो ब्रह्मरूप लोकबिषे अनन्यहुआ तिसकी महिमाको प्राप्तहोताहै "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" हे सौम्य ! उक्तप्रकार मुमुक्षु के अर्थ अमृतत्व प्राप्तिमें ॐकारकी उपासनारूप आलम्बन से इतर सर्व्वोत्तम आलम्बन कोई नहीं। ऐसा कठवल्ली उपनिषद् की श्रुतिवाक्य प्रमाणसे सिद्धही है। अतएव मुमुक्षु करके अपने मोक्षार्थ सर्व्वोत्तम परमश्रेष्ठ ॐकारोपासनाकाही आश्रयकरना उचितहै ॥ इति ॥ २ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत ॐकारोपासना ३ ॥

हे सौम्य ! अब अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् में जिसप्रकार प्रश्नपूर्वक ॐकारके पर अरु अपर दो भेद अरु क्रमसे मात्राओं के उपासकोंकी गति कही है, तिसको भी संक्षेपमात्र कहताहौं सावधानहोय श्रवणकरो ॥ हे प्रियदर्शन ! प्रश्नोपनिषद्के पञ्चम प्रश्नविषे सत्यकाम नामक ऋषि ने अपने आचार्य्य पिप्पलाद नामकऋषिसे प्रश्नकिया है कि "सयो ह वैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत, कतमं वावसतेन लोकं जयतीति"

तस्मैसहोवाच। एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥

हे भगवन् (पूजनेयोग्य) मनुष्यों के मध्य सो आश्चर्यवत् है जो कोई एक मनुष्य अपने मरण पर्य्यन्त सम्यक् प्रकार सर्व धर्म्माचरण अरु इन्द्रियों के अरु मनके निग्रहवाला हुआ समाहित चित्ततासे ॐकारके अभिध्यान से 'कर्म्मों के फल जे स्वर्गादि अनेक लोक हैं तिनमें से कौन से लोक का जयकरता है' अर्थात् वह प्रणवोपासक कौनसे लोक को प्राप्त होता है, सो आप कृपा करके कहिये॥ हे सौम्य! इस प्रकार जब सत्यकामनामवाले ऋषि ने अपने आचार्य्य पिप्पलाद ऋषि से प्रश्न किया तब सो उत्तर कहतेहुये " तस्मैसहोवाच। एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति " पिप्पलाद मुनि तिस प्रश्नकर्ता सत्यकाम प्रति कहतेहुये हे सत्यकाम! यह जो सत्य अक्षर पुरुषनामवाला परब्रह्म है अरु जो प्रथम उत्पन्न हुआ प्राणनामक अपर ब्रह्महै, सो उभय प्रकारका ब्रह्म ॐकार ही है। अथवा ॐकारका लक्ष्य सर्व्वाधिष्ठान अमात्रिक परब्रह्म है, क्योंकि मात्रारूप उपाधि से पर (पृथक्) है ताते वा मात्रा वाले सोपाधि ब्रह्म से श्रेष्ठ है ताते। अरु तिसका प्रतीक होनेसे त्रिमात्रिक अक्षर वर्णात्मक ॐकार अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्म है। अरु इस ॐकार अक्षर (वर्ण) को जो ब्रह्मत्व है सो 'जैसे शालिग्राम नामक पाषाण को विष्णु (हिरण्यगर्भ) का प्रतीक होनेसे उसको भी विष्णुपना है, तैसे है, ताते इस ॐकार को निरुपाधि निर्विशेष सर्व्वाधिष्टान परब्रह्म का प्रतीक होने से यह अपर ब्रह्म है, तिसकी अकारादि मात्रा की जाग्रदादि अवस्थादि रूप पादों के साथ एकताकर प्रथममात्रा को दूसरी में अरु दूसरी को तीसरी में, अरु तीसरी को, तीनोंकी अपेक्षा से जो सर्व्वाधिष्ठान चतुर्थ शिवहै तिसमें लयकर तदाकार अनन्य स्थिति से ए-

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमान मनुभवति ३ ॥

कात्म्य ध्यानकरके उस ॐकार का लक्ष्य जानने में आवता है। इसप्रकार जानके जो परब्रह्म है सो ॐकारही है। अर्थात् "ॐ" इस ॐकार अक्षरका जो लक्ष्य अविनाशी अक्षर परब्रह्म है ताते ॐकारही परब्रह्म है, अरु परब्रह्म का वाचक 'प्रतीक' होने से यह अपरब्रह्म है। इसप्रकार ॐकार को पर अरु अपर उभय ब्रह्मरूप जाननेवाला पुरुष ॐकारकी उपासना के आश्रय दोनों में से एकको पावता है। अर्थात् जो ॐकारकी उपासना (मात्राओंकी लयता) के विचाररूप आलम्बन से सर्ववृत्ति आदिकोंके अभावसे निर्विकल्प समाधिमें निर्विशेष आत्मस्थिति दृढ़तासे पावता है सो अभेदतासे परब्रह्म को पावता है। अरु जो उक्तप्रकार की आत्मस्थिति को न पायके तिसकी प्राप्तिके अर्थ 'ॐ' इस अक्षरकी जप विचारात्मक उपासनाको सम्यक्प्रकार यथाशास्त्र विधि आश्रयकरताहै, सो तिसका फल ब्रह्मलोकको प्राप्तहोय वहां ब्रह्मद्वारा लक्ष्यको पावताहै ॥ हे सौम्य! उक्त प्रकार कहके पुनः पिप्पलाद मुनि कहताहुआ कि हे सत्यकाम! अब ॐकारकी मात्राके ज्ञान उपासनाकेआश्रय अधिकारी उपासकों को जो जो फल, कहिये गति, प्राप्तहोता है तिसकोभी क्रमशः श्रवण करो जो पुरुष ॐकारको ब्रह्मका प्रतीक होनेसे समीपवर्त्ती अरु आलम्बनों में श्रेष्ठ आलम्बन परम उपकारक साधन जानताहै, अरु त्रिमात्रिक प्रणवकी उपासना करने योग्य है, इस प्रकार जानताहै। परन्तु ॐकारकी सर्व मात्राओं को यथार्थ विभाग पूर्वक जानता नहीं, किन्तु ॐकारकी एक अकार मात्रा ही उपासना करने योग्य है, इसप्रकार जानके ॐकार की पूर्णरूप

से उपासना न करके खण्डरूप से एक मात्रा कीही उपासना करताहै सो खण्डोपासक भी अवगतिको पावता नहीं, अब उसको जो गति प्राप्त होतीहै सो श्रवण करो "स यद्येकमात्रामभिध्यायीत तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति" अर्थ यह जो, सो उक्तप्रकार का उपासक जब केवल एकमात्राके विभागका जाननेवाला हुआ सर्वदा एक मात्रा रूपसे ही ॐकारको ध्यावता (ध्यान विचार करता) है, सो पुरुष तिस ॐकारकी एकमात्राके ध्यानके प्रभावसे ही तिस मात्राका साक्षात्कारवान् हुआ, देहत्यागके अनन्तर तत्काल ही पृथिवी (मनुष्यलोक) विषे (जन्म) पावताहै, तहां पृथिवी विषे अनेक योनियों के जन्म हैं तिनमें तिस उपासक को सर्वोत्तम वर्णत्रयी में से कोई एक मनुष्यलोक (शरीर) को ॐकारकी ऋग्वेदरूप प्रथममात्रा प्राप्त करती है, तब सो उपासक मनुष्यलोकमें द्विजोत्तमहुआ, तपकरके, ब्रह्मचर्य करके, श्रद्धा करके, सम्पन्नहुआ महिमाको अनुभव करताहै। हे सौम्य! महिमाका स्वरूप सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद्विषे "गो अश्व मिहमहिमेत्याचक्षते हस्ति हिरण्यं दासभार्य्यं क्षेत्राण्यायतनानीति" गो अश्व हस्ति आदिक पशु अरु सेवकादिक भृत्य। अरु भार्य्या उपलक्षण करके भार्य्या पुत्र पौत्रादि कुटुम्ब, अरु सुवर्ण उपलक्षण करके सुवर्ण रजत रत्नादिक धन, अरु रोगादिकों से रहित अरु दीर्घायु सहित सुन्दर शरीर, अरु क्षेत्र पृथिवी (राज्य) अरु आयतन कहिये सुन्दर निवासस्थान। इत्यादिकों को महिमा करके प्रतिपादन कियाहै तिस महिमाको वो ॐकार की एक मात्राका उपासक पावता है। परन्तु श्रद्धादिकोंसे रहित हुआ यथेष्टाचरण करता नहीं किन्तु शास्त्रानुसार ही चेष्टा। अरु पूर्वाभ्यास वश प्रणवोपासना। ही, करताहै। अतएव उक्तप्रकार का प्रणवोपासक दुर्गतिको कदापि प्राप्तहोता नहीं॥-॥ हे सौम्य!

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूयपुनरावर्त्तते ४ ॥

उक्तप्रकारके उपासकसे अन्य पुरुष " अथयदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते " अर्थ, यदि ॐकारकी दो मात्रा के जाननेवाला ॐकारको, अकार, उकार, इन दो मात्रारूप जानके मात्राओं के विभागपूर्वक ॐकारको ध्यावताहै । अर्थात् ॐकारका जप अरु दोमात्राके विभागके विचारसे अर्थ भावना रूप ध्यान करताहै, सो यजुर्वेदमय चन्द्रमारूप दैवतवाले । अर्थात् चन्द्रमा है देवता जिसका ऐसे मनबिषे एकाग्रता से आत्म भावको प्राप्त होताहै, सो । देहत्यागान्तरं । यजुर्वेद सम्बन्धी ॐकारकी दोमात्राके प्रभावसे अन्तरिक्षरूप आधारवाले चन्द्रलोक को प्राप्त होताहै, अर्थात् तिस ॐकारकी दोमात्राके उपासक साधकको यजुर्वेद जो है सो चन्द्रलोक सम्बन्धी जन्म प्राप्त करता है । अर्थात् जो पुरुष यजुर्वेद सम्बन्धी ॐकारकी दो मात्रारूपसे उपासना करते हैं सो उस उपासना के प्रभाव से यहां देहत्यागान्तर चन्द्रलोक में । जो इस लोक की अपेक्षा उत्तम अरु द्वितीय है । जन्म पावता है, तब सो तिस चन्द्रलोक सम्बन्धी महिमा (विभूति) को अनुभव करके (भोगके) पुनः इस मनुष्यलोक में आय जन्म पावता है । यह ॐकार को दो मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले की गति कहीहै । अरु धूमादि दक्षिणायन मार्गवालोंकी भी यही गति है हे सौम्य ! अब ॐकार के तीनों मात्रा की पूर्ण उपासक की जो गति है तिसको भी श्रवण करो " यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुष मभिध्यायीत स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः " अर्थ, पुनः जो पुरुष तीनमात्रा का ज्ञाताहुआ, अरु इस ॐकार

यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेणपरं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै सपाप्मना विनिर्म्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम् । सएतस्माज्जीवघनात्पशत्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौश्लोकौ भवतः ५ ॥

को ब्रह्मका प्रतीक होनेसे ब्रह्म प्राप्ति में उसको परम आलम्बन जानके त्रिमात्रिक ॐकार रूप सूर्य्य के अन्तरगत पुरुषको (ॐकारके लक्ष्यको) ध्यानकरता है। (अर्थात् जिस अधिष्ठान रूप परम पुरुष के आश्रय तीनों पादरूप मात्रा अध्यस्तहैं, अरु सर्प में रज्जुके अन्वयवत् जिसका तीनों मात्राओं में अन्वय है। अरु सत्यरूप रज्जु में अध्यस्त असत्य सर्प के व्यतिरेकवत् व्यतिरेक है, तिस सर्वाधिष्ठान निरुपाधि परम पुरुषको, त्रिमात्रिक ॐकार जो ब्रह्मका प्रतीक है तिसरूप सूर्य्यविषे उक्त परमपुरुषको ध्यानकरता है, वा आकाशगत सूर्य्य मंडलविषे, अरु त्रिमात्रिक 'ॐ' इस अक्षररूप सूर्य्य विषे जो सूर्य्यादि सर्वका प्रकाशक सर्वाधिष्ठान सर्वका आश्रय परमपुरुषहै तिसको उभय सूर्य्य विषे एक जानके अरु तिसके साथ आत्माकी एकताजान के (अर्थात् जो चैतन्यपुरुष प्रकाशरूप से सूर्य्य विषे स्थित है, अरु सर्वका साक्षीरूपसे शरीरादि संघातविषे स्थित है, अरु लक्ष्यार्थरूप होयके त्रिमात्रिक, ॐ, इस अक्षरविषे स्थितहै, सो एकही है इसप्रकार, ॐ, इस अक्षरविषे, अरु सूर्य्यमंडलविषे, अरु शरीरादि संघातविषे, अरु इन तीनोंको उपलक्षणकरके, अधिदैवत, अधिभूत, अध्यात्म, इन तीनोंप्रकारके जगत्विषे, एक अखंड अविनाशी चैतन्यपुरुषको "(ॐ कारेवेदं सर्व्वम्)" इत्यादि श्रुति अरु स्वानुभव प्रमाणसे()। जो मात्राओं के ज्ञान पूर्वक ध्यानकरता है सो तिस ध्यान उपासना के प्रभाव से मरणोत्तर (तेजोमयहुआ) तेजोमय सूर्य्य विषे प्राप्त होताहै।

अरु सो उपासक , जैसे ॐकारकी दोमात्रा का उपासक चन्द्र-लोकमें विभूतिको अनुभवकर पुनरावृत्तिको प्राप्त होताहै, तैसे त्रिमात्राका उपासक सूर्य्यमंडलविषे प्राप्तहुआ पुनरावृत्तिको प्राप्त होता नहीं, किन्तु सूर्य्यविषे प्राप्तहुआ ही होताहै । अर्थात् सूर्य्यलोकमें जाय वहां की विभूति महिमाको भोक्ताहुआ वहां ही रहता है " । यथा पादोदरस्त्वचा विमुच्यत एवं हवैस पाप्मना विनिर्म्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं " । अरु सो पुरुष , जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचाको त्यागके पश्चात् नवीनहुआ पुनः उस परित्याग कीहुई जीर्ण त्वचाको देखता (पावता वा ग्रहणकरता) नहीं । तैसेही प्रसिद्ध सो प्रणवोपासक सर्प की त्वचास्थानीय अशुचितारूप पापों से मुक्त होताहै । । अथवा जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचाको त्याग नवीन हुआ पुनः उस त्यागी हुई त्वचाको ग्रहण करता नहीं, तैसे वो तीनमात्रा का उपासक इस मनुष्य लोक सम्बन्धी शरीर रूप पापो से मुक्त हुआ सूर्य्य लोक विषे देव शरीरको पाय पुनः इसलोक सम्बन्धी शरीर को न ग्रहण करके देवरूपही रहता है । अरु इस लोक सम्बन्धी शरीररूप पापोंसे मुक्तहुआ सूर्य्यलोकविषे देव शरीरको पाय वहां भी उपासना के प्रभावसे, तीसरी मात्रारूप सामवेद करके, सूर्य्यलोकसे भी ऊंचे हिरण्यगर्भ नामक ब्रह्माकेसत्यलोक नामकलोकको प्राप्तहोताहै ॥ अरु " । सएतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयंपुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः" । सो तीसरीमात्रा वा तीनोंमात्रा का उपासक विद्वान् पुरुष सत्यलोक में स्थितहुआ इस सर्वोत्कृष्ट जीवघनरूप हिरण्यगर्भ से । अर्थात् सर्व सूक्ष्म शरीरों की समष्टतारूप हिरण्यगर्भ है अतएव उसको जीवघन कहतेहैं । पर कहिये ,श्रेष्ठ, परमात्म नामवाले पुरुषको 'जोसर्व शरीररूप पुरियों में स्थितहै वा सर्व शरीरगत पुरीतति नाड़ीविषे स्थितहै' देखताहै । अर्थात् जो ॐकारका लक्ष्य अरु हिरण्यगर्भादि सर्व अध्यस्थोंका अधिष्ठान जो एक सर्व्वात्मा परमपुरुषहै तिसको

तिस्रोमात्रामृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासुनकम्पते ज्ञः ६ ॥

साक्षात् सोहमस्मिभावसे अनुभवकर्त्ता पुरुष पुनरावृत्तिसे रहित हुआ ब्रह्माकेसाथ । वा ब्रह्मसे महावाक्यार्थका ज्ञानोपदेश पायके। मोक्ष होताहै । तहां इस अर्थ के प्रकाशक अग्रिम दो मन्त्र प्रमाणहैं "तिस्रोमात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासुबाह्याभ्यन्तरमध्यमासुसम्यक्प्रयुक्तासुनकम्पतेज्ञः"। अर्थतीन संख्याहैं जिनकीऐसी जोॐकारकी अकारउकार,मकार, यह तीनमात्रा हैं, सो मृत्युकी विषयही हैं अरु परस्पर सम्बन्ध वालीहैं, अरु वो तीनों मात्रा विशेष करके एकएक विषय बिषेही योजनाकरीगईहोवें ऐसानहीं,किन्तु विशेषकरकेएकहीध्यानकाल बिषे त्यागकीहुईं,जाग्रत्, स्वप्न,सुषुप्ति, यह तीन स्थान, अरु तिन के अभिमानी, जे, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, के अभिमानी 'वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, अरु अव्याकृत, तिनसे अपृथक्, विश्व, तैजस, प्राज्ञ,पुरुषतिनकी,अकार,उकार,मकार,इनतीनमात्रासे तादात्म्य करके। अर्थात् जाग्रदवस्था विश्वाभिमानी स्थूल भोग, इस व्यष्टि प्रथम पादकी, विराट् स्थान वैश्वानर अभिमानी स्थूल भोग, इस समष्टि पादसे एकताकर तिसका अकार रूप प्रथम मात्रासे तादात्म्य करके। अरु तैसेही स्वप्नावस्था तैजसाभिमानी विरलभोग, इस व्यष्टि द्वितीय पादकी सूक्ष्मस्थान हिरण्यगर्भाभिमानी विरलभोग, इस समष्टि द्वितीय पादसे एकताकर 'पुनः तिसका उकाररूप द्वितीय मात्रा से तादात्म्य करके, पुनः सुषुप्ति अवस्था प्राज्ञाभिमानी आनन्द भोग, इस व्यष्टि तृतीय पादको कारणावस्था रुद्रवा ईश्वराभिमानी आनन्द वा अज्ञान भोगइससमष्टि तृतीय पादबिषे एकता करके, पुनः उस पादकी मकार मात्रासे तादात्म्य करके। अर्थात् उक्त प्रकार जाग्रदादि

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोंकारेणैवायतनेनान्वेतिविद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति ॥ ७ इति ॥

तीनों पादों को अकारादितीनों मात्रासे तादात्म्य (एकता) करके ध्यानरूप जो बाह्य भीतर अरु मध्यकी योगक्रिया है तिसको सम्यक् ध्यानके कालविषे योजनाकिये हुये जब वे तीनोंमात्रायोजना किया होय, अर्थात् समष्टि उक्त पादोंविषे व्यष्टि उक्त पादोंकी योजनाकरके पुनः क्रमशः प्रथम अकार मात्राको द्वितीय उकारमात्राविषे लयकरे, अरु उस अकारयुक्त द्वितीय उकार मात्राको मकाररूप तृतीय मात्राविषे लयकरे, पुनः उस तृतीय मात्राको उस ॐकारके वाच्य अधिष्ठान विषे नामनामी के अभेद से लयकरे, वा अध्यस्तरूप तीनों मात्राको उसके अधिष्ठान से अपृथक् जानके लयकरे ।॥ इसप्रकार सम्यक् ध्यानके कालविषे तीनोंमात्रा उक्तप्रकार जब योजना करीहोय, तबउस ॐकारका ज्ञाता योगी चलायमान होतानहीं । अर्थात् विक्षेपको पावता नहीं,किन्तु अचलही होताहै । अरु जिसकरके उक्तप्रकारका प्रणवोपासक विद्वान् "ॐकारएवेदं सर्व्वम्" इत्यादि प्रमाण अनुभवसे सर्व्वात्मा ॐकाररूपहुआहै एतदर्थ उसका चलना (विक्षेप) किसकारणसे होवेगा ' किसीसे भी नहीं, क्योंकि विक्षेप का कारण द्वैतभेद भावहै, सो उसको न होयके सर्वत्र ॐकार आत्मभावही है, ताते विक्षेप के कारण द्वैतभावके अभावसे एक ॐकारदर्शी विद्वान् चलायमान होतानहीं ॥ हे सौम्य ! "ऋग्भिरेतंयजुर्भिरन्तारिक्षंससामभिर्यत्तत्कवयोवेदयन्ते" अर्थ, ऋग्वेद से ॐकारको एक मात्रारूप जानके भजन उपासन करनेवाला पुरुष इस मनुष्य लोकको प्राप्तहोताहै, अरु यजुर्वेद से ॐकार को दोमात्रारूप जानके उपासना करनेवाला विद्वान् देहत्यागोत्तर पितृलोक (चन्द्रलोक) को प्राप्त होताहै । अरु जिसको

वेदवेत्ता विद्वान् पुरुष जानते हैं, ऐसा जो तृतीय सर्वोत्तम ब्रह्म-लोक है तिसको, सामवेद से ओंकारको त्रिमात्रा रूपजानके उपासना करता है सो उत्तम उपासक इसलोक (शरीर) के त्यागान्तर, प्राप्त होताहै। इसप्रकार ओंकारकावेत्ता विद्वान् तिस अपर ब्रह्मरूप त्रिमात्रिक ओंकार को उक्तप्रकार जानके तिसकी क्रमसाध्य उपासना करते हैं सो उक्तप्रकार के तीनोंलोक में से एकको 'अपनी उपासना के अनुसार ओंकारकी उपासनारूप आलम्बन (आश्रय वा साधन) से प्राप्त होताहै अरु जो त्रिमा-त्रिक प्रणव के लक्ष्य चैतन्य अजर सत्य परम पुरुष नामवाला सदा शान्त अरु मुक्त, अरु जाग्रदादि सर्वभेद प्रपञ्च से रहित है अरु इसही हेतु से जरा मृत्युआदिकों से भी रहित है। अरु जिस करके जरादि रहित है एतदर्थही अभय है। इसप्रकार का जो शान्त मुक्त अजर अमर अभय परम अक्षर ओंकार का लक्ष्य है, तिसको त्रिमात्रिक प्रणवोपासनारूप आलम्बन से विद्वान् पावता है॥ हे सौम्य! उक्तप्रकार प्रश्नोपनिषद् करके प्रतिपाद्य अपररूप अरु पररूप ओंकार तिसकी मात्रादिकों के भेद से उपासना करनेवाले उपासकों को जो फल होताहै, अरु त्रिमा-त्रिक प्रणवोपासना के आलम्बन से ओंकारके लक्ष्य अमात्रिक परमात्माकी उपासना से परमात्म भावरूप फलकी प्राप्ति "तद्भावगतेनचेतसालक्ष्यं" होती है, सो सर्व जिसप्रकार श्रुतिने कहा है तैसे संक्षेपमात्र तुम्हारे प्रतिकहा अब जिसप्रकार मुण्डक उपनिषद् विषे प्रणवोपासना कही है तिसको भी संक्षेप मात्र श्रवणकरो॥

इतिप्रश्नोपनिषद्गत ओंकारोपासनासमाप्ता॥

अथमुण्डकोपनिषद्गत प्रणवोपासनाप्रारभ्यते ॥

प्रणवोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेनवेद्धव्यं शरवत्तन्मयोभवेत् ॥

अथ मुण्डकोपनिषद्गतप्रणवोपासनाप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य ! मुंडकउपनिषद् के द्वितीय मुंडकगत द्वितीयखण्ड के चतुर्थ मन्त्र बिषे कहा है "प्रणवोधनुःशरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेनवेद्धव्यंशरवत्तन्मयोभवेत्" अर्थ । ॐकार रूप धनुष है, अर्थात् बाणके लक्ष्य (निशाने) बिषे प्राप्त होनेको धनुष कारण है, धनुष विना बाण लक्ष्य बिषे प्राप्त होता नहीं । तैसेही आत्मा (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य) रूप बाणको अपने लक्ष्य अक्षर ब्रह्मबिषे प्राप्त होनेको कारण ॐकारोपासन है, अतएव ॐकारको धनुषरूपकरके कहा है । अरु जैसे बाण चलावने का अभ्यासकिये, अरु संस्कारयुक्त (शिलीमुख) हुआ बाणधनुषके आश्रयहुआ लक्ष्यबिषे स्थित होता है, तैसेही ॐकारकी उपासना के विचाररूप से सूक्ष्म शिलीमुख अरु शमदमादि साधनों करके संस्कारयुक्त हुआ, प्रणवोपासना रूप धनुष के आश्रय उक्त आत्मारूप बाण सो अपने आभास (प्रतिबिम्ब) भावको (जोकि अवस्थात्रयात्मक बुद्धिरूपा उपाधि के सम्बन्धसे प्राप्त हुआ है) त्यागके अपने अक्षररूपबिम्बबिषे जैसे प्रतिबिम्ब बिम्ब में तैसे अभेदता से स्थित होता है । एतदर्थ आत्मरूप बाणको अपने अक्षररूपलक्ष्य बिषे प्राप्तहोने को प्रणव जो है सो धनुषवत् धनुष है । अरु उक्त आत्मारूप बाण है (अर्थात् उपाधि करके लक्षित परमात्मा अक्षरकाही जलादिकोंगत सूर्य्यादिकों के प्रतिबिम्बवत्, इस देहादिक संघात बिषे सर्व बुद्धियोंकी वृत्तियों का साक्षीहुआ प्रवेशको पायाहै सो बाणवत् बाणहै । अरु आत्मा के अर्थ जो विषयों की तृष्णा सोई प्रमादहै, तिस प्रमादसे रहित

अप्रमत्त अरु सर्व से वैराग्यवान् जितेन्द्रिय समाहितचित्तता इत्यादि साधनरूप संस्कारसम्पन्नता तिसकरके सहित से वेधन (प्रवेश) के योग्य जो ब्रह्म सो लक्ष्य है। ताते प्रणवरूप धनुष के आश्रय आत्मरूप बाणका जब ब्रह्मरूप लक्ष्यबिषे प्रवेशरूपसे उक्त लक्ष्यका वेधन होता है, तिसके पश्चात् आत्मा बाणवत् लक्ष्य बिषे तन्मयतारूप होता है। अर्थात् जैसे बाणको लक्ष्य के साथ एकरूपतामयफल होताहै, तैसेंही देहादि अनात्माकार वृत्तियों के तिरस्कार से अक्षर के साथ तन्मयतारूप फलकोप्राप्त होना, यह सर्व बुद्धिमान् मुमुक्षुओं करके योग्य है॥ हे सौम्य! अब इसका और प्रकार से कल्पित विचारको श्रवण करो हे प्रियदर्शन! धनुष से जो बाण चलता है सो अपने मार्गगत वस्तुओंको उल्लंघनकरता अपने लक्ष्यको प्राप्तहो तन्मय होताहै, तैसे ही यह चिदाभासरूप बाण त्रिमात्रिक प्रणवरूप धनुष से अपने बिम्ब ब्रह्मरूप लक्ष्य की ओर चलता है, तब अपने जाग्रदादि अवस्थारूप व्यष्टिपादों को, विण्डादि समष्टिपादों के साथ, अरु तिनको अकारादि मात्राओं के साथ अभेद विचार के तिनको अध्यस्त होने से पीछे अविद्यात्मकताकी ओर डाल आप अपने अमात्रिक ब्रह्मरूप लक्ष्य बिषे प्राप्तहोय पश्चात् विचाररूप वेग से रहित हुआ लक्ष्यमय होताहै॥ अरु यहां जो कहाहै कि "शरवत्तन्मयो भवेत्" तिसका विचार इसप्रकार जानना कि, बाण जो है सो अपने लक्ष्यमें प्रवेशको पाय अदृश्य होनेसे तन्मयहुयेवत् भासता है, परन्तु लक्ष्यरूपतासे अभेद तन्मय होता नहीं अर्थात् बाण लक्ष्य में प्रवेश पायाहुआभी लक्ष्यके साथ अभेद एकताको पावता नहीं लक्ष्य से विजाति है ताते, एतदर्थ इसका अर्थ अग्रिम कल्पित कहे प्रकार भी जानने योग्य है। प्रणवरूप धनुषके आश्रय चिदाभासरूप बाणकरके ब्रह्मरूप लक्ष्यको प्रमाद (आलस्य वा विषयासक्तता) से रहितहोय वेधन करना योग्य है। यहां पर्यंत बाणके दृष्टान्त प्रमाण यथार्थ है

आगे जो तिसका फल "शरवत्तन्मयो भवेत्" तारूप होना कहा है। तिसको जल अरु हिमका दृष्टान्त विचार युक्त है, क्योंकि जलको भी ,शर, कहते हैं, अरु जल हिमकी अभेद एकता भी युक्त है। अर्थात् जैसे ,गुलेल, वा धनुष, कि जिनका आकार एकरूप है, नामक यन्त्रके आश्रय हिम (बरफ) का खंड रूप गिल्ला व बाण जलकी ओर चलाया हुआ अपने लक्ष्य जल को प्राप्त होय अभेद तन्मयताको प्राप्त होताहै, ताते शर शब्दका अर्थ जल अंगीकार करके उक्त दृष्टान्त प्रमाण विचारनेसे अभेद तन्मयता होने में शंका रहेनहीं, अरु अर्थ भी युक्त है। अर्थात् जैसे जल अपनी शीतलता स्वभाव करके हिम भावको प्राप्त होताहै, अरु जलकी कोमलतादि धर्मसे विपरीत काठिन्यतादि धर्मवाला भासता है, परन्तु सो तिस हिम अवस्थामें भी जलसे इतर कहने मात्रही है, अरु पुनः जलमें गया अपने काठिन्यतादि बाह्य धर्म को त्याग अभेदता से जलके साथ तन्मयताको पावताहै "यथा नद्यःस्यन्दमानाः समुद्रेस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय, तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तःपरात्परंपुरुषमुपैतिदिव्यम्" तैसेही ब्रह्मकी इच्छा वा स्वभाव रूपा माया करके ब्रह्महीं अल्पज्ञतादि धर्मवाला जीव भावको प्राप्तहुआसा भासता है, परन्तु वास्तव करके तत्त्वमस्यादि प्रमाणोंकरके ब्रह्मरूपही है, सो जीव (चिदाभास) प्रणव रूप धनुषको आश्रयकर आप बाणवत् हुआ ब्रह्मरूपजल लक्ष्यमें प्रवेशकर तन्मयताको प्राप्तहोताहै। ताते इसचिदाभासरूप आत्मा जीवको ब्रह्मरूप लक्ष्य के साथ अभेद तन्मयता होने के अर्थ प्रणवोपासनारूप मुख्यआलम्बनहै ॥ "ॐमित्येवंध्यायथ" "ॐ" इस उक्तप्रकारसे ॐकाररूप आश्रयवालेहुये शास्त्रोक्त कल्पना से ॐकारकाध्यानकरो, इसप्रकारज्ञानवान्आचार्य्यने मुमुक्षुकोब्रह्म आत्माकी अभेदतारूपमोक्षकी प्राप्तिकेअर्थ ॐकारकीउपासना रूपसर्वोत्तमआलम्बनकहा, तिसहीको आश्रयकरनायोग्य है ॥

प्रणवोपासनविचारसम्पूर्णम् ॥ ॐम् ॥

अथ कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषद्गत प्रणवविचार ॥

ॐम्। ॐमितिब्रह्म ॐमितीदꣳ सर्वम्। ॐमित्येतदनुकृतिर्हस्मवा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति । ॐमितिसामानि गायन्ति।ॐꣳशोमिति शास्त्राणिशꣳसन्ति। ॐमित्यध्वर्युः प्रतिगरंप्रतिगृणाति । ॐमितिब्रह्माप्रसौति । ॐमितिअग्निहोत्रमनुजानाति । ॐमितिब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह । ब्रह्मोपाप्नुवानिति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॐ दश इति ॥

हे सौम्य! अब तैत्तिरीयोपनिषद्‌बिषे जिसप्रकार प्रणवकी श्रेष्ठता वर्णनकियाहै तिसकोभी श्रवणकरो ॐमितिब्रह्म । ॐमितीदꣳसर्वम्। ॐमित्येतदनुकृतिर्हस्मवा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति । ॐमिति सामानिगायन्ति । ॐ ꣳशोमिति शास्त्राणिशꣳसन्ति। ॐमित्यध्वर्युः प्रतिगरंप्रतिगृणाति" अर्थ अब सर्व उपासनाके अंगभूत ॐकारोपासन कहते हैं। ॐ, इसप्रकारका यह शब्दरूप ब्रह्महै, इसप्रकार मनकरके ॐकारकी मात्रादिकोंका स्मरण विचाररूप उपासनाकरे। अरु जिसकरके 'ॐ' इसप्रकारका शब्द यहसर्व है। अर्थात् शब्दरूप यहसर्व प्रपञ्चएक ॐकारसेही व्याप्त है, अरु जो वाच्य (नामी) है सो वाचक (नाम) के अधीनहै, एतदर्थ यह सर्व ॐकारही है, इसप्रकार कहतेहैं॥ अबॐकारकोसर्व से ज्येष्ठ श्रेष्ठ होनेसे तिसकी स्तुति कहते हैं। ॐकारको उपास्य होनेसे, ॐकारका यह अनुकरणहै। अर्थात् जाते अन्यकरके "कहताहौं वा पावताहौं, ऐसेकहे वचनको श्रवणकरके, ॐ, ऐसे अनुकरण करताहै, एतदर्थ ॐकार अनुकरणहै, यह ॐकारका अनुकरणपना प्रसिद्धहै। अरु, ॐ, इसप्रकार श्रवणकरावो, इस कथनको प्राप्तहुये पुरुष उसॐकारके उच्चारणपूर्वक श्रवणकरावत हैं

तैसेही जो सामवेद के गायनकरनेवाले पुरुषहैं सो 'ॐ' इसप्रकार सामोंको गायनकरते हैं। अर्थात् सामवेदके गानकरके सर्वसामग ॐकारहीं को गायन करते हैं। अरु जो ऋचाके पाठक हैं सो 'ॐशो' ऐसे शास्त्र कहिये गानरहित केवल ऋचाको कथन करते हैं। अरु तैसेही जो अध्वर्यु (अर्थात् यज्ञविषे यजुर्वेदीय ऋत्विज् विशेष) है सो 'ॐ' इसप्रकार प्रतिगर (वेदके शब्द विशेष) को हवन करनेवाले के कथन कथनप्रति उच्चारण करताहै (अर्थात् यज्ञ में ऋग्वेदीय ऋत्विज् हवन करनेवाला होता है सो जब मन्त्रों को उच्चार करताहै तब अध्वर्यु उसके प्रतिमन्त्र के साथ ॐकारपूर्वक प्रतिगर का उच्चार करता है)। अरु जो ब्रह्मा (यज्ञकर्मका कर्त्ता (वा यज्ञमें दक्षिण दिशामें स्थित होय यज्ञका रक्षण करनेवाला) ऋत्विज् विशेष) है सो 'ॐ' इस प्रकार अनुमोदन करता है अरु 'ॐ' इस प्रकार अग्निहोत्र को अनुमोदन करता है। (अर्थात् होता करके होम करताहों, इसप्रकारके कथन कियेहुये को 'ॐ' ऐसे कहके अनुमोदन करता है। अरु जो ब्राह्मण हैं सो 'ॐ' इसप्रकार कहने को इच्छताहुआ, अध्ययन करता हुआ 'ॐ' ऐसेही कहता है (अर्थात् अध्ययन करने को ॐकाररूपसे ग्रहण करताहै। अरु ब्रह्म 'कहिये वेद' को प्राप्त होऊंगा इसप्रकार इच्छा करता हुआ 'ॐकारद्वारा वेदकोही प्राप्त होताहै' वा ब्रह्म 'कहिये परमात्मा' को प्राप्त होऊंगा इसप्रकार आत्माको प्राप्त होनेकी इच्छा को करता हुआ 'ॐ' ऐसेही कहता है (अर्थात् आत्मकामा पुरुष ॐकारकी उपासना द्वारा आत्मपद को प्राप्तहोता है इन सर्वका अभिप्राय यहहै कि ॐकारकेउच्चारण पूर्वक करीहुई सर्व क्रियाको फलवानूपनाहै, एतदर्थ ॐकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनी योग्यहै यह इसका तात्पर्य है ॥

इति तैत्तिरीय उपनिषद् सम्बन्धी प्रणवोपासनविचार ॥



अथ सामवेदीयछान्दोग्यउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासनविचार ॥

ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥
ॐमित्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् १ ॥

हे सौम्य! अब सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद्सम्बन्धी प्रणवोपासन विचार संक्षेपमात्र श्रवणकरो। इस उपनिषद्में 'प्राण' आदित्यादि, अनेक दृष्टि से प्रणवोपासना कही है सो सर्व यहां न कहके ॐकारकी रसतमत्वादि श्रेष्ठता अरुब्रह्मप्राप्तिमें मुख्यआलम्बन अरु मोक्षसाधनता संक्षेपमात्र कहताहौं। अरु इसकासविस्तर विचार इस उपनिषद्की व्याख्यामें होगा "ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत"। 'ॐ' यह जो एकवर्णात्मक अक्षरहैसोपरब्रह्मका प्रतीक, मुख्यनाम होनेसे इसकी अपरब्रह्म रूपसे उपासना कर्त्तव्य है, क्योंकि यह परब्रह्मका प्रतीक अरु नाम होने करके इसकी उपासनासे परब्रह्म प्रसन्नहोताहै, जैसे लोकबिषे जिसका प्रियनामलेके बोलावने से वहनामी प्रसन्नहोताहै तैसे,। अरु यह परब्रह्मका प्रतीक (प्रतिमा)अरुनाम है ताते इसबिषे ब्रह्मबुद्धि कर इसकी मात्राओं के विचारपूर्वक इसके लक्ष्यकी ध्यानादि रूपसे उपासना कर्तव्यहै। अर्थात् इसॐकार अक्षरकी ध्यानादि रूपसे उपासना कर्तव्यहै अर्थात् इस ॐकार अक्षरकी जपरूपसे वा ध्वनिरूपसे अरु मात्राओंके भेद विचाररूपसे उपासनाकरे। अरु मात्राओंके क्रमशः लय चिंतनपूर्वक मात्रादिकों के अधिष्ठानअक्षर परब्रह्मसे अपनेको अभेद अनुभवकर तादात्म्य स्थिति (निर्विकल्प समाधि)रूपसे ध्यानरूप उपासनाकरे। जैसे शालिग्राम नामक शिलाबिषे विष्णुबुद्धि करके तिसका पूजनादिरूप उपासन, अरु तिस शालिग्रामरूप आलम्बन करके तिसकरके लक्षित लक्ष्य सर्वव्यापी हिरण्यगर्भ वा श्यामसुन्दर चतुर्भुजादि

एषां भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्या आपोरसः अपामोषधयोरसः ओषधीनां पुरुषोरसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रसऋचःसाम साम्नः उद्गीथोरसः ॥ सएष रसानाꣳ रसतमः परमः परार्द्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः १ । २ । ३ ॥ इति ॥

नामरूप अवयववान् वैकुंठाधीश विष्णुका ध्यान लोक बिषे प्रसिद्ध है तैसे ॥ अरु परमात्माकी मुख्य उपासना बिषे मुख्य आलम्बन अरु परमात्मा का प्रतीक (स्मारकप्रतिमा) होनेसे, इस ॐकारको सर्व वेदान्त उपनिषदों बिषे सर्वसे श्रेष्ठ करके कहाहै, अतएव यह श्रेष्ठ है, अरु, जप, कर्म्म, स्वाध्यायादिकोंमें सर्व से प्रथम ॐकारका स्मरण करते हैं, अरुजिस जपादिकर्म्म में प्रथम इसके उच्चारण स्मरणपूर्वक जप कर्म्मादिकोंको करते हैं सोई फलवान् होताहै, एतदर्थ भी यह सर्वसे श्रेष्ठ है । अत एव इसवर्णात्मक ॐकार अक्षर उद्गीथकी उपासना सर्वोत्तमहै । ताते श्रद्धा भक्ति जितेन्द्रिय समाहित चित्त होय इस ॐकार की उपासना कर्त्तव्य योग्य है । अरु सामवेदीय उद्गाता (सामवेद का गायन करनेवाला) ऋत्विज् विशेष यज्ञादिकों में ॐकारका गायन करता है अतएव इसको उद्गीथ कहते हैं । अर्थात् उद्गाता जो सामका गायन करता है सो 'ॐ' इस अक्षर के स्मरणपूर्वक करता है । ताते ॐकार को उद्गीथ विशेषण से कहतेहैं ॥ अरु यह जो ॐकारकी उपासना, श्रेष्ठता, विभूति, फलादिक है सो इस ॐकार का उपव्याख्यान है ॥ अब इस ॐकारकी सर्वोत्तमता को श्रवण करो, हे सौम्य " एषां भूतानां पृथिवी रसः " इन सर्व चराचर भूतोंका पृथिवीरस (गति, परायण, अवष्टंभ) है । अर्थात् गति कहिये उत्पत्ति का कारण है, अरु परायण कहिये सर्व चराचर भूतोंकी स्थिति का हेतुहै, अरु अवष्टंभ कहिये प्रलय में निदान है । यह , गति, परायण,

अरु अवष्टंभ, इनतीनों पदोंका भेदहै॥ ऐसी जो सर्वचराचरभूतों का, रस, पृथिवी तिसका जल रस है "। अप्सु ह्योताच प्रोताच" यह बृहदारण्य के पञ्चमाध्यायकी श्रुतिहै। इस, रस, शब्दका अर्थ कारणता अरु सारभूतता बिषे जानना। तिस जल का ओषधि रस है। शंका, ओषधि को जलके कारणत्व का अभाव होनेसे उसको जलका रसत्व कैसे है। तहां समाधान कहते हैं, ओषधि जलका परिणाम सार है, एतदर्थ उसको जलका रस कहते हैं। अरु ओषधी का रस (सार) पुरुष ' कहिये शरीर, है क्योंकि यह शरीर अन्नरूप ओषधि का परिणाम (सार) है ताते। अर्थात् "एषां भूतानां" यहां से लेके "आपोरसः" यहां पर्यन्त रस शब्द का अर्थ कारण (आश्रय) परत्वजानना, अरु इससे आगे रसशब्द का अर्थ सारपरत्व है ऐसे जानना। ॥ अरु शरीररूप पुरुषका रस वाणी है, क्योंकि शरीर के अवयवों में वाणी श्रेष्ठ है ताते, अरु वाणीकोही लोक बिषे सरस रसना रसवती, इत्यादि विशेषणों से कहते हैं। अरु तिस वाणीका रस, कहिये सार, ऋचाहै। अरु तिस ऋचाओंका सामरसतर है 'अर्थात् सारहै। अरु तिस ऋचाओं के सारतर साम का उद्गीथ, ॐकार, सारतर है। इस प्रकार यह उद्गीताख्य ॐकारचराचर भूतोंका उत्तरोत्तर रसों का अतिशय करके रसतर है। अर्थात् जैसे इक्षु रसका सार गुड़ वा राब है, तिसका सार शक्कर है, तिसका सार खांड़ है, तिसका सार बूरा है, तिसका सारतर कन्द वा मिसरी है, तैसे। ॥ अरु परमात्मा का प्रतीक होने से इस ॐकारको पराद्धर्य कहते, हैं अर्थात् परमात्माकी उपासना का स्थान होने से यह वर्णात्मक ॐकार अक्षर परमात्मावत् मुमुक्षुओं करके उपास्य है। इत्यभिप्रायः ॥ अरु पृथिव्यादि रसों की संख्या से यह अष्टम है, अतएव इसको अष्टम कहा है, अर्थात् भूतोंका रस पृथिवी १, पृथिवीका जल २, जलका ओषधि ३, ओषधिका शरीर ४, शरीरका वाणी ५, वाणीका ऋचा ६,

त्रयो धर्म्मस्कन्धा यज्ञोध्ययनं दानमिति प्रथम स्तपएव द्वितीयो ब्रह्मचार्य्याचार्य्यकुलवासी । तृतीयो ऽत्यन्तमात्मानमाचार्य्यकुले ऽवसादन्सर्व एतेपुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति इति ॥

ऋचाका साम ७, सामका उद्गीथ ॐकार ८, । इसप्रकार पृथिव्यादि उत्तरोत्तर रसोंका अष्टम रस होने से ॐकार को "रसतमः" सर्वोत्कृष्ट रसतर कहाहै ॥ हे सौम्य ! अब इस छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय प्रपाठकके षष्ठ खण्ड बिषे प्रणवको अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्ति का साधन कहा है, तहां तिसकी विधि के अर्थ प्रथम "त्रयोधर्मस्कन्धाः" धर्म के तीनस्कन्ध (भेद) कहे हैं, तहां "यज्ञोऽध्ययनं दानमिति, प्रथम" अग्निहोत्रादि कर्म्म करना, अरु नियम से ऋगादि वेदों का अध्ययन करना, अरु भिक्षुक याचक को दानदेना, यह धर्म्मका प्रथम स्कन्ध है, सो मुख्यकरके गृहस्थका धर्म्महै । यहां जो प्रथमाश्रमी ब्रह्मचारी के धर्म्मको त्यागके गृहस्थ के धर्म्मको प्रथम कहाहै सो वानप्रस्थ की अपेक्षा से आर्षछान्दस प्रयोग से क्रमव्यत्ययसे वा गृहस्थ को अन्य तीनोंका रक्षक पोषक होने से कहा जानना । अरु "तप एव द्वितीयः" कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तप, धर्म्मका द्वितीय स्कंध है, सो वानप्रस्थका धर्म्म जानना । यहां जो वानप्रस्थ के धर्म्मको । जो तृतीयहै, द्वितीयकरके कहाहै सो गृहस्थ के प्रथमकी अपेक्षासे जानना । अरु "ब्रह्मचार्य्याचार्य्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्य्यकुलेऽवसादन्" आचार्य्य कुल में वास करनेका शील, कहिये स्वभाव, है जिसका, ऐसा आचार्य्य कुलवासी ब्रह्मचारी, अर्थात् केवल वेदाध्ययनकरने मात्रही को आचार्य कुलमें वास न करके आजन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुकुल में वास करके वहांही देहत्यागकरना, इस नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के लखावने के अर्थ "अत्यन्त" यहपद दियाहै । अर्थात् विधिपूर्वक जो नैष्ठिक

ब्रह्मचर्य्यहै सो धर्म्मका तृतीय स्कंधहै। इस उक्तप्रकारके धर्म्मवान्, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, यहतीनोंअपने अपने धर्म्माचरणके प्रभावसे स्वर्गादि पुण्यलोकको प्राप्तहोतेहैं, अतएव इन तीनोंको "पुण्यलोका" इस विशेषणसे कहाहै॥ अरु इनतीनों की अपेक्षासे जो चतुर्थ संन्यासीहै सो "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" ब्रह्मजो ॐकार तिसकी उपासनामें स्थित होने से तिस उपासनाके प्रभावकरके अमृतत्व(मोक्ष) को प्राप्तहोताहै। अर्थात् यहां जो केवल संन्यासीको ही प्रणवोपासना कहा है तिसका हेतु यह जानना कि सामान्य रीतिसेतो चारोही आश्रमके पुरुष प्रणवोपासनाके अधिकारी हैं परन्तु संन्यासीको अन्य अग्निहोत्रादि कर्म्मोंके त्यागपूर्वक शमदमादि करतसन्ते केवल प्रणवोपासनाका अधिकारहै, ताते उसको प्रणवोपासनाका अधिकार विशेष होनेसे उसको "ब्रह्मसंस्थो" यह विशेषण दियाहै। अरु पूर्वोक्तप्रकार ॐकारकेलक्ष्य परमात्माकी ॐकाररूप आलम्बन से उपासना करनेवाला अमरणभाव (मोक्ष) को प्राप्तहोताहै, अतएव कहाहै कि "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" प्रणवोपासक मोक्षको प्राप्तहोता है॥ इति॥

इति सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद्सम्बन्धी
प्रणवोपासनविचार समाप्तम्॥

अथ यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् सम्बन्धी प्रणवोपासन विचार प्रारभ्यते ॥

ॐ३ खं ब्रह्म ।

खंपुराणं वायुरं खमिति ह स्मा ह कौरव्यायणी पुत्रो वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुर्वेदैनेन यद्वेदितव्यम् ॥ इति ॥

हे सौम्य ! अब यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् के सप्तमाध्याय सम्बन्धी प्रणवोपासनविचार संक्षेपमात्र कहताहौं सो श्रवणकरो यहां सो " ॐ३ खं ब्रह्म " यह ब्राह्मणभागका मन्त्र है । तिसमें ॐकारका वाच्य जो ब्रह्म तिसका खं विशेषण है । अर्थात् निराकार सर्वव्यापी परिपूर्ण एकरस ब्रह्महै सो विशेष्य हैं, अरु तैसा होनेसे , खं, उसका विशेषण है । अरु विशेष्य विशेषणका समानाधिकरण होनेसे इसका , नीलकमलवत्, " खं ब्रह्म " ऐसा निर्देश (उपदेश) है अरु ब्रह्मशब्द विशेषकरके बृहत् (बड़े) का बोधकहै, अतएव उसको आकाशका विशेषण देके , खं ब्रह्म, कहा है । जो सो खं विशेषणवाला ब्रह्म है सो , ॐ, शब्दका वाच्य होनेहे ' ॐ' यह शब्दरूप है, अरु उक्तप्रकार के विशेष्य विशेषणकरके अरु वाच्य वाचकता करके उभयथा भी उसका सामानाधिकरण अविरुद्ध है, अतएव ब्रह्मोपासन साधनेके अर्थ , ॐ, यहशब्द युक्तहीहै । अरु श्रुत्यन्तरमें भी कहा है तथाच " एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् " " परमोमित्यात्मानं युंजीत " " ॐमित्येवं ध्यायथ आत्मानमित्यादि " अरु ॐकारका अन्यार्थ असंभवहै, जैसे अन्यत्र " ॐमिति शंसत्योमित्युद्गायतीति " कहाहै सो, स्वाध्यायके आरम्भ अपवर्ग के बिषे ॐकारका प्रयोग विनयोग होनेसे कहाहै नतु तहां अर्थान्तरकेहेतु एतदर्थ ध्यान साधनत्वकरके ॐकारका उपदेश है । अरु यद्यपि ब्रह्म, आत्मा, इत्यादिक जो शब्दहै सो ब्रह्मवस्तु के

वाचकनामहै, तथापि श्रुतियों के प्रमाणसे ब्रह्मका उपदेश ॐकार करकेही है, अतएव ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छावालेकोब्रह्मप्राप्तिके अर्थ ॐकार सर्व्वोत्तम साधनहै। अरु यहां जो ॐकार ब्रह्मका, खं, आकाश विशेषण है तिसकरके भूताकाशको न ग्रहणकरके ॐकारके लक्ष्य चिदाकाश (चैतन्याकाश) का ग्रहणहै, सो कैसा है, पुराण कहिये चिरन्तन है। अर्थात् उत्पत्त्यादि रहित अनादि है। अरु उसको "सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यम्" "सूक्ष्माच्चतत्सूक्ष्मतरं विभाति" इत्यादि प्रमाणकरके पृथिव्यादि भूतों से आकाश सूक्ष्महै अरु आकाशसे सर्व्वशक्तिकी समष्टतारूप अव्याकृतनाम आकाश, जो चिदाकाशरूप अक्षरविषे ओतप्रोत है, सूक्ष्महै। अरु तिससे सूक्ष्म ॐकारका लक्ष्य चैतन्याकाश परम सूक्ष्महैं, अतएव उसको सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म कहते हैं। ताते उस महासूक्ष्म अक्षर आत्मा ब्रह्मको आलम्बन विना जाननेको कोई भी शक्यनहीं, अतएव जैसे लोक विष्णुआदिक देवताके आकार से अंकित पाषाणादिकोंविषे विष्णु आदिकोंकी भावना करते हैं, तैसेही श्रद्धाभक्ति भाव विशेषकरके परब्रह्मका प्रतीक जो ॐकार अपरब्रह्म तिसविषे परब्रह्मकी भावनाकर उपासना करनी। अरु "वायुरं खमिति", वायुरं, कहिये जिस आकाशविषे वायु विद्यमानहोय तिस आकाशको, वायुरं, कहते हैं। अर्थात् वायु कहिये सूत्रआत्मा समस्त जगत्को, जैसे सूत्रमें मालाके मणिके तैसे, अपनेविषे धारके जिस परमाकाशविषे स्थितहै तिस चैतन्याकाश प्रणवके लक्ष्यको, वायुरं, कहतेहैं, सो कौन जानता है, कौरव्यायणीका पुत्र जानता है, अतएव, खं, इस शब्दका अर्थ यहां चैतन्याकाशही युक्त है, ऐसा मानते हैं। तात्पर्य्य यहहै कि, खं, शब्दकरके निरुपाधि ब्रह्म, अरु, वायुरं, इसकरके सोपाधिब्रह्म, सो उभयप्रकारके ब्रह्मका बोधक ॐकारही है, क्योंकि परब्रह्मका प्रतीकहोनेसे, प्रतिमावत् साधनरूप से प्रतिपाद्य है। तथाच "एतद्वैसत्यकामपरञ्चापरञ्चब्रह्मयदों-

कारइति " अरु यह ॐकार वेद है , जो जानने योग्य वस्तु है सो जिसकरके जानीजाय तिसका नाम वेद है, सो मुमुक्षुओंकरके अज्ञानावस्थामें जानने योग्य ज्ञेयरूप जो परब्रह्म आत्मा सो दुर्विज्ञेय होनेसे ॐकाररूप आलम्बनद्वाराही जानाजाताहै, अरु ऋगादि वेदोंका बीज (कारण) होनेसे ॐकारही वेद है 'जैसे नामकरके नामी जानाजाता है तैसे, ताते ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण 'यह ॐकारही वेदहै इसप्रकार जानते मानते हैं ॥

इति यजुर्वेदीयबृहदारण्यउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासन विचारसमाप्तम् ॥

हे सौम्य! इन ईशादि सर्व उपनिषद् करके प्रतिपाद्य ॐकारोपासन कहने का अभिप्राय यह है कि मुमुक्षुको ब्रह्मभावरूप मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ त्रिमात्रिक प्रणवोपासनारूप आलम्बन सर्वोत्तमहै " नातःपरमस्ति " इससे उत्तम और आलम्बन कोई नहीं । अरु विष्णुआदिकोंकी प्रतिमावत् यह ॐकार परमात्मा की प्रतिमास्मारक (स्मृतिकरावनेवाला)है । अरु यही उसअनामी परमात्माका मुख्य नामहै, अतएव इसको परमात्मप्राप्ति में मुख्य आलम्बन जानके मुमुक्षुओंकरके इस ॐकारकी उपासना अवश्य कर्त्तव्यहै ॥

इतिश्रीईशादिसर्वउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासन विचारसंक्षेपतःसमाप्तम् ॥

अथ हिरण्यगर्भादिसप्तसिद्धान्तसम्बधीप्रणवोपासनविचार ॥

हेसौम्य!समस्त शास्त्रोंके सात सिद्धान्त हैं, तहांप्रथम हिरण्य-

अथरामगीताकेअनुसारमात्राओं कालयचिंतवन ॥

पूर्वंसमाधेरखिलं विचिन्तयेदोंकारमात्रंसचराचरंजगत् । तदेववाच्यंप्रणवोहिवाचकोविभाष्यतेऽज्ञानवशान्नबोधतः १ । ४८ ॥

हे सौम्य ! अब परब्रह्म की प्राप्ति में सर्वोत्तम जे प्रणवोपासन तिसकी मात्राओं के क्रमशःलय चिन्तवन द्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्मकी आत्मस्वभावसे जिसप्रकार साक्षात् प्राप्ति होती है सो प्रकार तुम्हारे प्रति संक्षेपसे कहताहौं तिसको सावधान होयके श्रवण करो ॥ तहां प्रथम, श्लोकका अक्षरार्थ "समाधि से पूर्व सम्पूर्ण जे चराचर जगत् [तिसको] ॐकार मात्रही चिन्तवन करे निश्चय करके प्रणव (ॐकार) नामहै [अरु]सो (जगत्) ही नामी है [सो नाम नामीका भेद] अज्ञानवशातुहै ज्ञान से नहीं " हे प्रियदर्शन ! जो विवेकी साधन सम्पन्न आत्मजिज्ञासु पुरुष हैं सो निर्विकल्प समाधि के प्राप्त होनेके पूर्व सम्पूर्ण चराचर जगत्को एक ॐकारमात्रही चिन्तवनकरे । क्योंकि "ॐकारएवेदंसर्व्वम् " । यह सर्व ॐकारही है । ऐसी श्रुतिकी आज्ञा है, ताते निश्चय करके प्रणव जो ॐकार सो नाम है अरु जगत्ही उसका वाच्यकहिये नामीहै । क्योंकि "तस्योपव्याख्यानं भूतंभवद्भविष्यदिति सर्व ॐकारएव " इस मांडूक्यउपनिषद् की श्रुति प्रमाणसे । अर्थात् ॐकार नामहै अरु जगत् नामीहै ताते निर्विकल्प समाधिके पूर्व (सविकल्प समाधि बिषे) जगत्को ॐकार रूपही चिन्तवन करे, सो नाम नामीभी मुमुक्षुके समझावनेके अर्थ आचार्य्यों ने कहलिया है वास्तव करके तो नाम नामीका भी भेदनहीं जो भेद भासताहै सो अज्ञान वशसे भासताहै, सम्यक् ज्ञान होनेसे नाम नामीका भेदनहीं । अर्थात् जब

अकारसंज्ञः पुरुषोहिविश्वकोह्युकारकस्तैजसईर्यतेक्रमात् । प्राज्ञोमकारःपरिपठ्यतेऽखिलैःसमाधिपूर्वेनतुतत्त्वतोभवेत् २ । ४९ ॥

वाच्यरूप त्रिमात्रिक प्रणवोपासक को उस उपासना के प्रभाव से लक्ष्यरूप अमात्रिक निर्विशेष निरुपाधि आत्मतत्त्वका साक्षात्काररूप अपरोक्ष सम्यक्ज्ञान होताहै तब वृत्ति के अभावसे,नाम, नामी, यहभी संज्ञा रहतीनहीं, केवल एक अद्वैत परमशांत शिव विज्ञानघन आत्मतत्त्वही प्रकाशता है " शिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेय " इत्यादि प्रमाणसे १ । ४८ ॥

हे सौम्य ! यह जो वर्णात्मक ॐकार है तिसके तीन अक्षर (मात्रा) हैं, तहां प्रथम अकार, द्वितीय उकार, तृतीय मकार, अरु इसका वाच्य जो जगत् है तिसके तीनपाद हैं, प्रथम स्थूल विराट्,द्वितीय सूक्ष्म हिरण्यगर्भ, तृतीय कारण अव्याकृत, अरु क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन अभिमानी देवता हैं । अरु ॐकारका लक्ष्य जो प्रत्यगात्माहै तिसकी तीनमात्रा हैं ,जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, अरु इनके अभिमानी आत्मा को क्रमसे , विश्व, तैजस, प्राज्ञ, कहते हैं अतएव , अक्षर, पद, मात्रा, इन तीनोंका एकही पर्य्यायहै ताते वाचक जे वर्णात्मक ॐकार तिसका जो वाच्य समष्टि व्यष्टि जगत् सो परस्पर अभेदहै एतदर्थही जाग्रदभिमानी विश्व पुरुष अकार संज्ञकहै, तिसकी स्थूल विराडभिमानी ब्रह्मा देवताके साथ एकताहै । अरु क्रमशःस्वप्नाभिमानी तैजसको उकार ऐसाकहतेहैं,तिसकी सूक्ष्माभिमानी हिरण्यगर्भ विष्णुदेवता के साथ एकता है । अरु सम्पूर्ण ज्ञानवान् प्राज्ञको मकार कहते हैं, अर्थात् सुषुप्त्यभिमानी प्राज्ञकी अरु अव्याकृताभिमानी रुद्रकी मकार मात्राके साथ एकता है । सो यह सर्व निर्विकल्प समाधि के पूर्व है । अर्थात् मुमुक्षुपुरुषको यावत् अमात्रिक सर्व्वाधिष्ठान् निर्विशेष आत्मास्थिति को प्राप्तहोने रूप

विश्वंत्वकारं पुरुषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधाव्यव-स्थितम्। ततोमकारे प्रविलाप्यतैजसं द्वितीयवर्णं प्रणवस्यचान्तिमे ३॥५०॥

निर्विकल्पसमाधि न प्राप्तहोय तावत् उक्तप्रकार चिन्तवनकर्त्तव्य है, अरु जब तिसविचारसे निर्विकल्प आत्मस्थितिको प्राप्तहोवे तब नहीं, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म कारण, ब्रह्मा विष्णु रुद्र, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति, बिश्व तैजस प्राज्ञ, अकार उकार मकार, इत्यादि विशेषता का भेद भाव रंचकमात्र भी रहता है नहीं किन्तु सैंधव लवणवत् एक विज्ञानघन आत्मतत्त्वही प्रकाशता है २।४६॥

हे सौम्य! इस श्लोक का उत्तर श्लोक से अन्वयहै ताते इन दोनों श्लोकों का मिश्रित अक्षरार्थ कहते हैं। बहुत प्रकार से स्थित विश्वसंज्ञक अकार पुरुषकोतो उकारमें लयकरे तदनन्तर प्रणवका द्वितीयवर्ण तैजस संज्ञक (उकारको) पिछले अक्षर मकार बिषे लयकरे॥ तदनन्तर पुनः प्राज्ञसंज्ञक कारण मकार को भी इसपर चैतन्यघन आत्माबिषे विलीनकरे [तदनन्तर] सोमैं सर्वकाल नित्य मुक्त विज्ञान दृष्टि उपाधिसे रहित निर्मल परब्रह्म हौं [ऐसी निश्चय भावनाकरे]॥ हे प्रियदर्शन! जो बुद्धिमान् साधन सम्पन्न मुमुक्षु पुरुष है सो आत्मदेवकी प्राप्ति के अर्थ यह बिचारकरे कि अनेकप्रकार नानारूपसे स्थित विश्व संज्ञक अकार पुरुष को उकार बिषे लीनकरे। तदनन्तर ॐकार का द्वितीय अक्षर जो सूक्ष्म तैजस संज्ञक उकार तिसको भी कि जिसबिषे प्रथम विश्व अकार पुरुषको लीनकिया है। प्रणव के अन्तिम अक्षर मकार बिषे लीनकरे। पुनः तिसके अनन्तर प्राज्ञसंज्ञक कारण मकार कोभी इस सर्वसेपर चैतन्य घनआत्मा बिषे लीनकरे इस प्रकार मात्राओं के लय चिन्तवनके अनन्तर, सो सर्वाधिष्ठान कि जिसबिषे उक्त समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्मसर्व प्रपंचमात्रा अध्यस्त (अविद्या करके कल्पित) है, सो मैं सर्वकाल

नित्यमुक्त सर्वज्ञ विज्ञान दृष्टि सर्व उपाधिसे रहित शुद्धनिर्मल प्रकृतिसे पर साक्षात् निर्विशेष ब्रह्महो ॥ तथाच ॥ " अयमात्मा ब्रह्म " शुद्धमपापविद्धम् " " शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यंते सआत्मा सविज्ञेय " " सआत्मा तत्त्वमसि " " अहंब्रह्मास्मीति " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे अहंब्रह्म भावनाबिषे प्रत्यादृढ़करके सर्व उपाधिके अभावसे निर्विकार निराकार अपने आप आत्मा को प्राप्तहोवे ॥ – ॥ हे सौम्य! यह कही जो मात्राओं की लीनता तिसको व्यष्टि समष्टि की एकतासे पुनः सविस्तर कहते हैं, हे प्रियदर्शन! प्रथम कहा कि अकार जो प्रथम मात्रा है तिसको उकार रूप द्वितीय मात्राविषे लयकरे, तिसका अर्थ यह है जो अकार जाग्रत्रूप जगत् है अरु विश्व तिसका अभिमानी है, तिसको वैश्वानर भी कहते हैं, अरु ब्रह्मा इसका देवता है, अरु सत्त्वगुणहै । ऐसी जो प्रथम अकार मात्राहै तिसको उकारसूक्ष्म तैजसरूपजानो । अर्थात् जाग्रत् जगत्को सूक्ष्मस्वप्नरूपजानो; क्योंकि स्वप्नही अपने तीव्र संवेगकरके जाग्रत्रूपहो भासताहै , जैसेस्वप्नमेंसोयाहुआ पुरुष स्वप्नकोदेखता तिसके तीव्रसंवेगसेही बिनाजाग्रत्के प्राप्तहुये उठके चल देता है, अरु भूत संज्ञाको प्राप्तहुये जाग्रत् अरु स्वप्नकी स्मृतिमात्र तुल्यहै ताते जाग्रत् जगत् को स्वप्नरूप जानो । अरु स्थूल जाग्रदभिमानीको सूक्ष्मस्वप्नाभिमानी तैजस का स्वरूपजानो क्योंकि जैसे स्वप्नतीव्र संवेग करके जाग्रत्रूपहो भासताहै तैसे तिसस्वप्नका अभिमानी जाग्रत्का अभिमानीहो भासताहै ताते । अरु ब्रह्मा जो स्थूल जाग्रत् जगत्का देवताहै तिसको सूक्ष्मस्वप्न जगत्का देवता जो विष्णु है तिसही कारूप जानो क्योंकि सूक्ष्मसेस्थूल अरु विष्णुसे ब्रह्माफुरेहैं । अर्थात् यह जो स्थूल जाग्रत् जगत्है सो सूक्ष्मस्वप्नरूपहै । अरुजाग्रदभिमानी विश्वको स्वप्नाभिमानी तैजसरूपजानो अरु ब्रह्माको विष्णुरूप जानो । इसप्रकारके चिन्तवनसे प्रथम अकारमात्राको द्वितीय उकार मात्रा विषे लयकरो । अरु यह जो उकार सूक्ष्म

रात्राण्यर्द्धमासा मासा ऋतवः संवत्सराइति विधृतास्तिष्ठन्त्ये तस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्पन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्यायां याश्च दिश मन्वेति॥ एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशꣳसन्तियजमानंदेवा दर्वीपितरोऽन्वायत्ताः ॥ इत्यादि॥ हे सौम्य! उक्त प्रकार जो सूर्य्यादि सर्वका नियामक प्रेरक स्वामी सर्वाधिष्ठान परम अक्षर ॐकारक लक्ष्यहै तिसकात्रिमात्रिक ॐकार प्रतीक अरु वाचकहै अतएव त्रिमात्रिक प्रणवके आलम्बन से जो उस लक्ष्यरूप परम अक्षरकी अभेद अहमग्रे उपासना करताहै सोई ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणहै अरु सोई मोक्षको प्राप्तहोता है॥

शिष्यउवाच ॥ हे गुरो! हे भगवन्! जिसअक्षरका आप ऐसा प्रभाव अरु प्रताप कहतेहौ। तिसको हम प्रत्यक्ष कैसे जानें सो आप कृपाकर आज्ञा करिये॥

गुरुरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन! ऐसा प्रश्न क्यों करतेहौ वो तो सर्वका अपना आप प्रत्यगात्मा है अरु यही सर्वका अनुभवकर्त्ता अनुभव रूप अक्षरहै, अरु यही सर्वका द्रष्टा श्रोता मन्ता बोद्धाहै इससे इतर न कोई द्रष्टाहै न श्रोताहै न मन्ता है न बोद्धाहै, हे सौम्य! ऐसा जो सर्वका ज्ञाता अनुभवी अक्षर आत्माहै सो "तत्त्वमसि" सो तू है तेरा क्षय कदापि नहीं ताते सर्वका ज्ञाता तूही है तेराज्ञाता अन्य कोई नहीं, तूही चक्षुरादि सर्वका द्रष्टाहै तेरा द्रष्टा कोई नहीं, तूही सर्व का श्रोता है तेरा श्रोता अन्य कोई नहीं, तूही सर्वका मनन करता है तेरा मन्ता कोई नहीं, अरु तूही सबका विज्ञाता है तेरा विज्ञाता कोई नहीं, अतएव सर्व क्षराक्षर का ज्ञाता प्रकाशक अधिष्ठान परम अक्षर तूही है तू अपने आपको अनुभवकर॥

हे सौम्य! यह जो सर्व वेद शास्त्रोंद्वारा निर्णय करके निर्विशेष प्रत्यगात्मा अक्षर कहा है सोई वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐकार अक्षर का लक्ष्य निर्गुण ब्रह्म परम अक्षर है, अरु सोई

सर्व का अपना आप प्रत्यगात्मा है इसही के सम्यक् ज्ञान से मोक्ष होता है, ताते ॐकारके लक्ष्य प्रत्यगात्मा के जानने के अर्थ त्रिमात्रिक ॐकार की जप अरु अर्थ की भावना रूप उपासना कर्त्तव्य योग्यहै क्योंकि यह परब्रह्मकी आत्मत्वसे प्राप्ति में परमोत्तम आलम्बन है । अतएव इस त्रिमात्रिक ॐकारकी यथा शास्त्र उपासनारूप आलम्बनसे अपने आप सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ अनुभव कर पराशान्तिको प्राप्तहोवो, आगे जो तुम्हारी इच्छा ॥–॥ इति ॥–॥

इति श्रीमाण्डूक्योपनिषद्गौडपादीयकारिकाअरुक्षेपक भाषा भाष्यकारकृतसंग्रहप्रकरणसंहिता समाप्ता ॥

ॐहरिः ॐतत्सद्ब्रह्मार्पणम् ॥

ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिःॐ ॥

अथ ॐकारके

क्रमशः सप्त सिद्धान्तों के मात्राक्रम ॥

प्रथम हिरण्यगर्भ सिद्धान्त क्रम १			
अग्नि	वायु	सूर्य्य	यह तीन मात्रा
ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	यह तीन ब्रह्म
अकार	उकार	मकार	यह तीन अक्षर
द्वितीय कपिलदेव सिद्धान्त क्रम २			
सत्त्वगुण	रजोगुण	तमोगुण	यह तीन गुण
व्यक्तज्ञान	अव्यक्त ज्ञान	ज्ञेयज्ञान	यह तीन ज्ञान
मम	बुद्धि	अहंकार	यह तीन कारण
तृतीय अपान्तर मुनि सिद्धान्त क्रम ३			
गार्ह्यपत्याग्नि	आहवनीय	दक्षिणाग्नि	यह तीन मुख
ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र	यह तीन देवता
धर्म्म	अर्थ	काम	यह तीन प्रयोजन
चतुर्थ सनत्कुमार सिद्धान्त क्रम ४			
भूत	भविष्यत्	वर्त्तमान	यह तीन काल हैं
स्त्री	पुरुष	नपुंसक	यह तीन लिंग हैं
बहिस्संधी	संध्यसंधी	क्रान्तसंधी	यह तीन संधी हैं
पञ्चम ब्रह्मनिष्ठों का सिद्धान्त क्रम ५			
हृदय	कंठ	मूर्द्धा	यह तीन स्थान
बहिःप्रज्ञा	अन्तरप्रज्ञा	घनप्रज्ञा	यह तीन प्रज्ञा
जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	यह तीन पद हैं
षष्ठः पशुपति शिव सिद्धान्त क्रम ६			
शान्त 'जाग्रत्'	घोर, स्वप्न,	मूढ़, सुषुप्ति,	यह तीन अवस्था
अन्न	जल	सोम	यह तीन भोग्य
अग्नि	वायु	सूर्य्य	यह तीन भोक्ता
सप्तम विष्णुपञ्चरात्र सिद्धान्त क्रम ७			
बल	वीर्य्य	तेज	यह तीन आत्मा
ज्ञान	ऐश्वर्य	शक्ति	यह तीन स्वभाव
संकर्षण	प्रद्युम्न	अनिरुद्ध	यह तीन व्यूह हैं

यह सप्तसिद्धान्त के मतसे एक ॐकार की मात्राके ६३ भेदहैं ॥

॥ अथ अन्य प्रकार से ॐकार की मात्रादि विचार ॥

१	अकार	उकार	मकार	यह तीन मात्रा
२	अग्नि	वायु	सूर्य्य	यह तीन ऋषि
३	गायत्री	त्रिष्टुप्	बृहती	यह तीन छन्द
४	ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र	यह तीन देवता
५	श्वेत	रक्त	कृष्ण	यह तीन वर्ण
६	जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	यह तीन अवस्था
७	भूः 'भूर्लोक'	भुवः 'पितृलोक'	स्वर् 'स्वर्गलोक'	यह तीन व्याहृति वा लोक
८	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	यह तीन स्वर
९	ऋग्	यजुः	साम	यह तीन वेद
१०	गार्हपत्य	दक्षिणाग्नि	आहवनीय	यह तीन अग्नि
११	प्रातः	मध्याह्न	सायं	यह तीन संधिहैं
१२	भूत	भविष्यत्	वर्त्तमान	यह तीन काल
१३	सत्व	रज	तम	यह तीन गुण
१४	उत्पत्ति	पालन	संहार	यह तीन क्रिया
१५	कर्म्म	उपासन	ज्ञान	यह तीन काण्ड
१६	विराट्	हिरण्यगर्भ	अव्याकृत	यह तीन शरीर
१७	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	यह तीन लिंग
१८	होता	अध्वर्यु	उद्गाता	यह तीन ब्राह्मण
१९	ज्ञान	ऐश्वर्य	शक्ति	यह ती । स्वभाव
२०	बहिः	अन्तर	घन	यह तीन प्रज्ञा
२१	अन्न	जल	चन्द्रमा	यह तीन भोग
२२	अग्नि	वायु	सूर्य्य	यह तीन भोक्ता

हे सौम्य ! यह जो ॐकार की मात्राओं का भेद स्वरूप कहा है सो अकार उकार मकार इन तीन मात्राओं का विस्तार है अरु समस्त जगत् इसके अवान्तरहै ताते ॐकार एवेदं सर्व्वम् इति ॥

उर्दू

४० दिल बहलाव पहलाहिस्सा
४१ दूसरा ,,
४२ तीसरा ,,
४३ हालातहिनरी कारटकर (कमिश्नर बनारस)
४४ मज़ामीन
४५ छोटाजामजहाँनुमा
४६ फ़ारसी सर्फ़ व नह्व
४७ तथा उर्दू
४८ कुछ बयान अपनी ज़ुबान का
४९ सिक्खोंका तुलू और गुरूब
५० हक़ाइकुल्मौजूदात
५१ क़िस्सैसैंडफ़ोर्ड व मर्टन हरसेहहिस्सा
५२ पहलाहिस्सा
५३ दूसरा ,,
५४ तीसरा ,,
५५ मिफ़्रअतुल् काहिलीन
५६ क़िस्सा गुलाब चमेली

अँगरेजी

५७ हिस्ट्रीआफइंडिया हिस्साअव्वल
५८ दूसरा ,,
५९ तीसरा ,,

कुतुबजैल जो इसवक्त बाकी नहीं हैं फिर छपैंगी—

६० अँगरेजी अक्षरों के सीखने का उपाय
६१ बच्चों का इनाम
६२ आजमगढरीडर
६३ वीरसिंहकावृत्तान्त
६४ भूगोलहस्तामलक पहिलाभाग
६५ तथा तीसराभाग
६६ लेक्चरज्ञान व कर्म
६५ हरूफ़ तहज्जी

